राजा रुद्रप्रताप सिंह विरचित सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड के रामकथा सन्दर्भों का आलोचनात्मक विश्लेषण

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध

शोधछात्र
चन्द्रभूषण पाण्डेय
एम० ए०

निर्देशक
डॉ० पारसनाथ तिवारी
एम० ए०, डी० फिल०

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

भूमिका

अवध प्रान्त जन्म भूमि हो और हिन्दी से एम० ए० तक की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर सुलभ हो जाय तो छात्र के हृदय में अपने आप गोस्वामी तुलसी-दास "रामचरितमानस" और राम-कथा के प्रति श्रद्धा के भाव भर जाते हैं। प्राय: प्रत्येक विश्वविद्यालय में एम० ए० [हिन्दी] की परीक्षा में विशेष अध्ययन में तुलसीदास को लेने का विकल्प रहता है। मेरे अध्ययन-काल में ये सारे संयोग एक साथ सुलभ थे। मेरा जन्म अवध प्रान्त के प्रतापगढ़ जनपद में हुआ है जो अयोध्या और प्रयाग के बीच में पड़ता है और काफी समय से प्रयाग की पावन भूमि पर निवास का अवसर सुलभ है। यहाँ अनेक राम कथा मर्मज्ञों और राम-चरित मानस के कथा-वाचकों से मिलने और उनके सत्संग का अवसर मुझे सुलभ होता रहा।

हिन्दी से एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद शोध करने की इच्छा से तो उस ज्ञानपिपासा से आकुल होकर मैं कुछ राम-कथा के सम्बन्ध में ही अध्ययन करना चाहता था। संयोग से एक दिन संस्कृत और हिन्दी के विद्वान् डॉ० जय शंकर त्रिपाठी से भेंट हो गई। ये हमारे कालेज के प्राध्यापक रहे हैं। उनसे मैंने अपनी जिज्ञासा प्रकट की और इस सम्बन्ध में उनका परामर्श लेना चाहा तो उन्हें समाधान देते देर नहीं लगी, क्योंकि जहाँ तक मुझे मालूम है कि वे बहुश्रुत चाहे हिन्दी साहित्य हो अथवा संस्कृत साहित्य हो, चाहे इतिहास अथवा दर्शन हो उसमें अपनी अबाध गति रखते हैं। उन्होंने बताया कि यदि राम कथा के अध्ययन की प्रबल उत्कण्ठा है तो क्यों न राम कथा पर ही शोध-कार्य किया जाय। मैंने निवेदन किया कि मैंने शोध-प्रबन्धों की लम्बी सूची देखी है जहाँ राम-कथा पर शोध करने के लिए कुछ शेष बचा ही नहीं ही नहीं है। तब श्री त्रिपाठी जी ने मुझे आश्वस्त करते हुए कहा कि जो शेष बचा हुआ है उसे मैं तुम्हें बता रहा हूँ। उन्होंने उसी दिन मुझे अपने घर बुलाया।

सायंकाल मैं उनके घर गया । उन्होंने मुझे माण्डा नरेश कवि रुद्र प्रताप सिंह विरचित "सुसिद्धान्तोत्तम राम-खण्ड" काव्य प्रबन्ध की दो जिल्दें दिखाईं और बताया कि यह समग्र ग्रन्थ इसी प्रकार के नौ जिल्दों में है । मैंने इस ग्रन्थ को पहले कभी नहीं देखा था । मुझे बाद में पता चला कि राम कथा पर शोध करने वाले कई अनुसंधानकर्त्ता भी इस ग्रन्थ के परिचय से वंचित हैं ।

मैं एक साथ ही प्रसन्न और चकित हुआ कि राम- कथा का एक दुर्लभ ग्रन्थ पढ़ने को मिल गया । लेकिन श्री त्रिपाठी जी ने कहा कि इसे केवल पढ़ो ही नहीं इस पर अनुसंधान भी करो। यह ग्रन्थ अनुसन्धान- योग्य है। श्री त्रिपाठी जी ने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में एक गवेषणात्मक लेख "हिन्दी का महापुराण" प्रयाग के दैनिक भारत के रविवासरीय परिशिष्ट [12 जून, 1955] में प्रकाशित कराया था । उसकी प्रति भी कृपा कर उन्होंने मुझको दी और फिर मुझे दूसरी सलाह दी कि मैंने इतना रास्ता बता दिया लेकिन अब अनुसंधान के सही पथ पर अग्रसर होने के लिए तुम इलाहाबाद विश्वविद्यालय हिंदी विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापक तथा सन्त- साहित्य के जाने- माने विद्वान् डॉ० पारसनाथ तिवारी के पास जाओ वे तुमको सही दिशा- निर्देश प्रदान करेंगे।

मैं उस निर्देश के अनुसार आदरणीय डॉ० पारसनाथ जी तिवारी के पास पहुँचा और "सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड" की कतिपय जिल्दें उन्हें दिखाईं जिनको देखकर वे विस्मित हुए और पूरे एक सप्ताह तक ग्रन्थ का अवलोकन एवं विचार विमर्श कर उन्होंने मेरे शोध का विषय निश्चित किया जिसका शीर्षक उन्होंने रखा- "राजा रुद्र प्रताप सिंह- विरचित सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड के राम-कथा सम्बन्धी का आलोचनात्मक विवेचन", इस शीर्षक से मैंने उनकी आज्ञानुसार विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में शोध कार्य हेतु अपना आवेदन प्रस्तुत किया। हिंदी विभाग की कृपा का मैं बहुत आभारी हूँ कि उसने उक्त विषय पर मुझे शोध-

कार्य करने की अनुमति प्रदान की और डॉ० पारसनाथ तिवारी को ही मेरा निर्देशक मनोनीत किया। उनकी आज्ञा और निर्देशन में मैं इस विशाल ग्रन्थ के अध्ययन में तत्पर हुआ। इस ग्रन्थ का अध्ययन करना साधारण बात नहीं थी। यह ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण और शेष कल्प दो ग्रन्थों पद के आधार पर कवि रुद्र प्रताप द्वारा विरचित किया गया है। इसमें उनका पाण्डित्य एवम् कवित्व दोनों विद्यमान है। लेकिन आदरणीय गुरुवर डॉ० तिवारी जी की कृपा से इन सारी कठिनाइयों को मैंने हल कर लिया। इस प्रकार इस शोध - कार्य को पूरा करने में गुरुजनों की कृपा और भगवान राम की प्रसन्नता ने मेरी सहायता की। कार्य पूरा हो गया और विद्वानों के समक्ष निरीक्षण के लिए प्रस्तुत है।

इस कार्य में अध्ययन सम्बन्धी जो कठिनता थी वह तो थी ही और भी अभिलाषायें थीं। अध्ययन और परामर्श के सम्बन्ध में हिन्दी विभाग के रीडर डॉ० रुद्र देव त्रिपाठी का मैं कृतज्ञ हूँ जिनके परामर्श से मेरी अभिलाषायें पूर होती रही हैं। इस अध्ययन में प्रेरणा- प्रदायिनी आह्लादिनी शक्ति स्वरूपा मेरी माँ तो थीं ही। जिनके चरणों में शत- शत नमन है, हमारे सगे सम्बन्धियों और इष्ट मित्रों की शुभ- कामनाओं ने मुझे बहुत बल दिया जो हमें सतत् उत्साहित करती रहीं, हम उन सबके प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

इस शोध- कार्य के सम्बन्ध में एक बड़ी कठिनाई यह थी कि ग्रन्थ की सम्पूर्ण प्रतियाँ मुझे प्राप्त नहीं थीं और वे माण्डा के राजभवन से ही मिल सकती थीं। मैंने [illegible] माण्डा- नरेश श्री विश्वनाथप्रताप सिंह जी जो उस समय केन्द्र में मंत्री थे उनको तीन पत्र लिखे किन्तु उनका कोई उत्तर मुझे नहीं प्राप्त हुआ। मैं इस बात को आज तक नहीं समझ सका कि अपने पूर्वजों की इस ज्ञान- राशि के प्रति राजा साहब का यह उपेक्षा भाव क्यों रहा। मुझे इनकी प्रतियाँ प्राप्त करना अनिवार्य था अन्यथा मैं शोध कार्य कर ही नहीं सकता था। अतः विवश होकर मैं मांडा राजभवन पहुँचा। वहाँ पर मेरी भेंट

राजभवन के व्यवस्थापक बाबू सुखदेव सिंह से हुई । बाबू सुखदेव सिंह जी को मैं
अनेक धन्यवाद देता हूँ। उन्होंने पहले तो आतिथ्य किया और फिर उसके
बाद राजभवन का वह कक्ष खोल दिया और मेरे सम्मुख "[illegible] राम
कण्ठ" काव्य- प्रबन्ध की समस्त जिल्दों की प्रतियाँ प्रस्तुत कर दीं कि इनमें
से अपनी इच्छानुसार उनकी प्रतियों का चयन कर लूँ जो प्रतियाँ फटी, जीर्ण
अथवा दीमकों से सुरक्षित थीं। पूरी अठारह "रामकण्ठ" काव्य-प्रबन्ध की
जिल्दें से भरी हुई थीं। मैंने प्रत्येक जिल्द की एक- एक प्रति जो ठीक हाल
त में थीं अपने कार्य के लिए ले लिया और प्रसन्नतापूर्वक प्रयाग वापस चला आया।

कार्य असाधारण था इसलिए लम्बा समय लग गया। लेकिन मुझे इस बात
की प्रसन्नता है कि हिन्दी के क्षेत्र में यह एक अनूठा कार्य गुरुजनों की कृपा से
पूरा हुआ। दोष तो इसमें बहुत से होंगे, लेकिन विज्ञ जन गुणों को ग्रहण कर राम
कथा के मुझ जैसे अकिंचन विद्यार्थी को अनुगृहीत करेंगे ।

भवदीय

[चन्द्रभूषण पाण्डेय]

श्रावण पूर्णिमा
सम्वत् 2048

विषयानुक्रमणिका

विषय		पृष्ठ
भूमिका	-	1 - 4

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

बाल पर्व

चतुर्थ अध्याय

कौशला पर्व

पंचम अध्याय

अटवी - पर्व

विषय	पृष्ठ
भक्ति और वैराग्य से सम्बन्धित निरूपण	- 112 - 113
शूर्पणखा प्रसंग	- 113 - 114
कनक मृग का विचार	- 115 -
सीता हरण	- 115 - 124
सीता विलाप	- 125 - 127
जटायु	- (121 - 124)
लंका में सीता का वर्णन	- 127 - 131
कवि का निज पंथ वर्णन	- 131 - 135

अष्टम् अध्याय

किष्किंधा-पथ

नवम् अध्याय

युद्ध - पथ

विषय	पृष्ठ

सप्तम अध्याय

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

देश की साहित्य- रचना में राम- कथा का आदर सम्भवतः वाल्मीकि रामायण की रचना से पूर्व ही विद्यमान रहा है। यद्यपि इसके प्रमाण हमें नहीं मिलते हैं और न हम यह कह ही सकते हैं कि इस देश में भी वाल्मीकि से पहले भी राम-कथा लिखी गई किन्तु राम के अमित पराक्रम, उनके लोकोत्तर त्याग और लोकजनप्रियता की बात ऐसी थी कि लोक का प्रत्येक मानस बिना उससे प्रभावित हुए नहीं रह सकता था। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना की है। उस रचना का कारण राम के लोकोत्तर चरित्र का प्रभाव ही है। मूल रामायण अर्थात् वाल्मीकि रामायण के प्रथम सर्ग में जिस समय उन्होंने देवर्षि नारद से पूछा, "संसार में ऐसा कौन है जो अतिशय पराक्रमी, धीरवान, गुणवान धर्मात्मा, विद्या- विशारद है, तथा जिसके क्रोध के सामने देवता भी कम्पायमान हो जाते हैं, आदि। महर्षि वाल्मीकि के इस प्रश्न के उत्तर में नारद ने उनको राम की कथा सुनाई थी, जिसका विस्तार महान् रामायण काव्य के रूप में कवि वाल्मीकि ने किया।

वैदिक भाषा से हटकर लौकिक- संस्कृत में ऐसी प्रौढ़ रचना पहली बार की गई। इसलिए रामायण को आदिकाव्य तथा महर्षि वाल्मीकि को आदिकवि नाम से अभिहित किया गया। लेकिन इसके पूर्व भी राम के चरित्र को लेकर राम- कथा लिखने का प्रयास किया गया। कम से कम महर्षि च्यवन के बारे में तो प्रमाण हमें उपलब्ध ही है। "बुद्ध-चरित" के रचयिता महाकवि अश्वघोष ने लिखा है कि वाल्मीकि उस राम-काव्य की रचना में सफल हुए जिसको महर्षि च

च्यवन नहीं पूरा कर सके थे -

वाल्मीकिरादौ च ससर्ज काव्यम् ।
जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षि:[1] ।।

अर्थात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रामचरित की रचना महर्षि वाल्मीकि से पहले भी होती रही। उनके बाद तो राम-कथा अनेक देशों में अनेक भाषाओं में लिखी गई । वाल्मीकि रामायण की रचना के पश्चात् उसके पूर्ववर्ती रामकाव्य लुप्त किये गये। जैसाकि हम हिन्दी में देखते हैं कि संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास के "रामचरितमानस" के लिखे जाने के बाद उसके पहले के प्रचलित अनेक राम- काव्य लोकप्रियता से हट गये।कालान्तर पन्द्रहवीं शती ईसवी में वैष्णव भक्त स्वामी रामानन्द राम-भक्ति की, जो धारा दक्षिण से उत्तर की ओर ले आए उससे समाज का हर वर्ग प्रभावित हुआ और राम-काव्य लिखने की एक धार्मिक जिज्ञासा भक्त कवियों में जागृत हुई। सन् 1575 ई0 में जब गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना की और उनका यह "मानस" जन-जन के कण्ठ का हार बन गया तो देश में विशेष तौर पर उत्तर भारत में कुछ राजाओं ने भक्तिपरक रचनायें लिख करके अपने लिए कवि का यश और धर्म की उपलब्धि दोनों को प्राप्त करने की कोशिश की। ऐसे राजाओं में काशी नरेश ईश्वरी नारायण सिंह, रीवां नरेश विश्वनाथ सिंह एवं रघुराज सिंह तथा भाण्डा नरेश राजा रुद्र प्रताप सिंह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

1- बुद्धचरित, 1/43

राजा रुद्र प्रताप सिंह गहरवार क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए थे। और इनके पूर्वज कन्नौज तथा वाराणसी के शासक 12 वीं शती ईस्वी में थे। इतिहास में जयचन्द्- विजयचन्द्र का नाम विशेष रूप से उल्लेख किया जाता है। बारहवीं शती के अन्त में सन् 1191 ई० में जब पृथ्वीराज चौहान की पराजय तराइन के युद्ध में मुहम्मद गोरी से हो गई तब अगले वर्ष मुसलमानों के आक्रमण से कन्नौज में गहरवार भी पराजित हो गये। वे कन्नौज से भागकर फिर काशी पहुँचे। काशी में भी अपने को सुरक्षित न समझकर वे गंगा और विन्ध्याचल के बीच, प्राचीन काल में जो वत्स देश कहा जाता था, उसकी ओर प्रयाण किया। यहाँ पर दूसरी- तीसरी शती ईस्वी में[3] भारशिव नाग क्षत्रियों का शासक न था। जिसकी राजधानी कान्तीपुरी थी। अब उसे कन्तित कहा जाता है। इस भाग में यमुना के तट तक भारशिव नाग क्षत्रियों की ही परम्परा के सरदार 12वीं शती ईस्वी में विद्यमान थे जिनसे उनकी जागीरें छीनकर गहरवारों ने अपनी धाक जमायी। इनमें दो स्थान प्रमुख थे - [1] कन्त देश, [2] माण्डा।

विशेष रूप से इतिहास में मांडा में ही गहरवार राज्य के वंश का वर्णन मिलता है। लेकिन राजा रुद्रप्रताप सिंह ने अपने इस महाकाव्य में प्रधान स्थान कन्त देश का जिक्र कई बार किया है। और उन्होंने लिखा है - "गहरवार उसमें शासक हैं। यह जानने योग्य बात है कि गहरवारों की ही शाखा आगे बढ़कर बुन्देलखण्ड में ओरछा में भी स्थापित हुई जो ओरछा नरेश मुगल सम्राट के बहुत भक्त रहे। उनकी सभा में रहकर कवि केशवदास ने "रामचन्द्रिका" जैसे महनीय काव्य की रचना की। माण्डा में जो गहरवार वंश स्थापित हुआ उसकी तीन शाखायें इस क्षेत्र में हो गईं। माण्डा कर्णावती नदी के तट पर स्थित है।

3- भारतीय इतिहास का उन्मीलन, पृ०- 220-22।
[जयचन्द्र विद्यालंकार]

इसके पूर्व में कनकावती नदी के तट पर जो त्रियपुर स्थान है और माण्डा के दक्षिण - पूर्व में बेलन नदी के तट पर रामगढ़ डैया स्थान है। इन तीनों स्थानों पर गहरवार वंश के सामन्त रहने लगे और उन्होंने आसपास के स्थानों पर अपनी शासन- व्यवस्था स्थापित की। जिसमें मुख्य राज्य माण्डा कहा जाता रहा। इसी माण्डा राज्य में 19वीं शती के अन्त में रुद्रप्रताप सिंह का जन्म हुआ ।

रुद्र प्रताप सिंह के पिता का नाम ऐश्वर्य सिंह एवं पितामह का नाम पृथ्वी पति सिंह था। रुद्र प्रताप सिंह के पुत्र कृष्णपाल सिंह तथा उनके पुत्र रामप्रताप सिंह थे। रामप्रताप सिंह के लड़के राम गोपाल सिंह थे, राम गोपाल सिंह के कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने रामगढ़ डैया के राजा भगवती प्रसाद सिंह के द्वितीय पुत्र विश्वनाथ प्रताप सिंह को गोद लिया जो कांग्रेस पार्टी के विशिष्ट व्यक्तियों में गिने जाकर उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री, भारत सरकार के वित्त मन्त्री तथा कालान्तर में रक्षामंत्री पदों को सुशोभित किया। पश्चात् कुछ सैद्धान्तिक मतभेद के कारण कांग्रेस पार्टी से अलग होकर एक नवीन पार्टी जन-मोर्चा की स्थापना की। भारत के प्रधानमंत्री बने। 11 महीने तक इस पद पर रहे और अल्पमत हो जाने के कारण उनको प्रधानमंत्री पद से हटना पड़ा।

कवि ने बालकाण्ड के आरम्भ अर्थात् वंश पद के प्रथम विश्राम में अपने माता-पिता, गुरु और गुरु-पत्नी का गुणगान किया है। उसके अनुसार उनके पिता ऐश्वर्य सिंह तथा माता का नाम रत्ना था -

तेहि कुल माण्डा नगर जानी ।
नृप ऐश्वर्य सिंह के रानी ॥

* * * *

इसके पूर्व में कर्मावती नदी के तट पर श्री विजयपुर स्थान है और माण्डा के दक्षिण - पूर्व में बेलन नदी के तट पर रामगढ़ डैया स्थान है। इन तीनों स्थानों पर गहरवार वंश के शासक रहने लगे और उन्होंने आसपास के स्थानों पर अपनी शासन- व्यवस्था स्थापित की। जिसमें मुख्य राज्य माण्डा कहा जाता रहा। इसी माण्डा राज्य में 18वीं शती के अन्त में रुद्रप्रताप सिंह का जन्म हुआ ।

रुद्र प्रताप सिंह के पिता का नाम बैरवर्द सिंह एवं पितामह का नाम पृथ्वी पति सिंह था। रुद्र प्रताप सिंह के पुत्र कमपाल सिंह तथा उनके पुत्र रामप्रताप सिंह थे। रामप्रताप सिंह के लड़के राम गोपाल सिंह थे, राम गोपाल सिंह के कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने रामगढ़ डैया के राजा भगवती प्रसाद सिंह के द्वितीय पुत्र विश्वनाथ प्रताप सिंह को गोद लिया जो कांग्रेस पार्टी के विशिष्ट व्यक्तियों में गिने जाकर उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री, भारत सरकार के वित्त मन्त्री तथा कालान्तर में रक्षामंत्री पदों को सुशोभित किया। पश्चात् कुछ सैद्धान्तिक मतभेद के कारण कांग्रेस पार्टी से अलग होकर एक नवीन पार्टी जन-मोर्चा की स्थापना की। भारत के प्रधानमंत्री बने। ।। महीने तक इस पद पर रहे और अल्पमत हो जाने के कारण उनको प्रधानमंत्री पद से हटना पड़ा।

कवि ने बालकाण्ड के आरम्भ अर्थात् वंश पथ के प्रथम विश्राम में अपने माता-पिता, गुरु और गुरु-पत्नी का गुणगान किया है। उसके अनुसार उनके पिता बैरवर्द सिंह तथा माता का नाम रत्ना था -

> तेहि कुल बाम्ह बदट जानी ।
> नृप बैरवर्द सिंह के रानी ।।
>
> * * * *

रत्नाकर सा उत्तम भ्राता ।
जो भइ मम शरीर के दाता ।।
रूद्र प्रताप नाम है मेरा ।
महाराज बैरवी किशोरा[4] ।।

संवत् 1863 [1806ई0] में पौष शुक्ल तृतीया रविवार, मकर संक्रान्ति के समय प्रयाग तीर्थ में बैरवी सिंह ने अपना शरीर त्याग किया और माण्डा के राज्य के अधिकारी रूद्र प्रताप सिंह हुए। कवि ने अपने पिता की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है - उन्होंने कई यज्ञ किये हैं और उनके पुण्य के प्रताप से ही मैं राजा कहा जाता हूँ -

जनक प्रशंसा से कहत,
बिरद मोहिं नर नाह ।।[5]

यहाँ पर कवि ने अपने को काशिराज का कुल कहा है और गहरवारों का राज्य काशी में था यह प्रसिद्ध ही है। किन्तु कवि का अपने को काशिराज के कुल का कहने का अभिप्राय यह है कि वह अपने को वैदिक राजा चन्द्रवंशी दिवोदास की कुल- परम्परा में मानता है। यह वर्णन उसने उत्तरकाण्ड [राजपद] में किया है। इस पद के अन्त तथा इसके आगे कवि ने अपने गुरु का वर्णन किया है और लिखा है - वे पंच गौड़ ब्राह्मण थे। ब्राह्मण शरीर में साक्षात् वेद थे। वे वेदत्रयी प्रवर के अध्येता थे। यजुर्वेद की माध्यंदिन शाखा ने तो मानों स्वयं उनका शरीर वरण किया हो। उन गुरु श्री रूद्रमणि की कृपा से कवि को प्रेरणा और प्रतिभा प्राप्त हुई। जिससे वह यह रामचरित लिखने जा रहा है। कवि चाहता है कि गुरुदेव की कृपा से उसे रघु राज कभी भूले नहीं। गुरु और गुरु- पत्नी दोनों को कवि ने प्रणाम किया है -

---

4/5- रू0 राम कड बंध पद विधान । दो0- 33.

पूर्व बंस पूजित बहुधाई ।
गोरी बाढ़ी जासु बड़ाई ।।
गायत्री- दाता गुरु सोई ।
जासु क्रिया जगो- पद होई।।
बुध गौतम कौन प्रतिवादी ।
सारस्वत कछु बाजी रव सादी।।
वाचस्पति सम विद्या जासु ।
वेद वेदांग - सहित प्रकासु ।।

गोपाचल पर सिद्ध जेहि गोपाल गुरु गोपाल ।
दैवज्ञ वर स्वामिन समहिं जिमकहिं नहिं रघुलाल ।।[6]

कविवर रूपनारायण सिंह ने उत्तरकाण्ड [राजपद] में अपने वंश का वर्णन किया है। इनके कुल के पूर्व पुरुष राजा माणिकचन्द्र थे। ये माणिकचन्द्र जयचन्द्र के चचेरे भाई थे। इसी कुल में भूपाल सिंह हुए जिनके तीन पुत्र थे। वे तीनों मुहम्मद गोरी के आक्रमण से पराजित हुए। इनकी यह पराजय सम्भवतः [illegible] में हुई। यह 12वीं शताब्दी का अन्त का समय रहा होगा। उन तीनों पुत्रों में मझले पुत्र ने फिर आगे बढ़कर गंगा और विंध्याचल के बीच जंगलमय प्रदेश पर अधिकार किया जो किरात और भीलों से भरा हुआ था। यह कन्त देश था। पुराणों के अनुसार यहाँ विश्वामित्र का स्थान था।[7] कवि के अनुसार इसी में माण्डा राज्य था। कवि के पूर्वजों की राजधानी माण्डा में रही इसे भी उसने उल्लेख किया है -

मुनि माण्डव्य पुरी शुभ राखी ।
राजधानि तहँ भूपति भाखी ।।

6- पु0 रामखण्ड - वंश पद - दो0 37 एवं 38.
7- वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग 24/ 21-23.

फिर आगे लिखा है - किंग जार्ज फीर ।

एक बात विचारणीय है कि माँडा करूष देश में है या करूष अलग प्रदेश है। दोनों के शासक उनके पूर्वज हैं, ऐसा कवि ने लिखा है। ब्रह्माण्डपुराण के अनु-सार गंगा के दक्षिण करूष देश का कथन है। जहाँ घोर जंगल था और यहीं पर ताड़का नाम की राक्षसी रहती थी।[10] महाभारत के समय यहाँ आबादी हो गई थी और यहाँ का राजा दंतवक्र था। करूष देश के कारण दंतवक्र का वंश ही करूष कहा जाता था। वायुपुराण के अनुसार विंध्याचल के पठार पर गंगा जी के दक्षिण करूष देश था।[11] वर्तमान बक्सर और शाहाबाद ही करूष देश है। हो सकता है कि उस समय करूष देश की सीमा माँडा तक आती रही हो। वैसे माँडा वर्तमान में प्रयाग जनपद में है, जो कि प्राचीन वत्स देश है।

कवि ने अपना यह "रामकण्ड" 10 वर्ष की अवधि में अर्थात् सन् 1830 में समाप्त किया। उन्होंने रामकथा को काव्यबद्ध करके अपने को धन्य माना है-

देशवर्ध सिंह कुमार जब मतिमंद रुद्रप्रताप कहँ,
कलि कलुष पावन करन सुखदन रामचन्द्र कथा कहउँ ।
संसार पार अपार नौका यह चरित रघुबीर को,
जब जन्म आनन्द अभिनन्दन पन हरनि त्रिगुन त्रिपथ नीर को[12] ।।

इसका प्रकाशन कवि के पौत्र माण्डा नरेश रामप्रताप सिंह के द्वारा सम्पन्न हुआ। यह प्रकाशन सन् 1904 और सन् 1910 के बीच हुआ। इसका सम्पादन काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने किया। राजपथ

10- ब्रह्माण्डपुराण - 2/16/63, 3/71/156.
11- वायुपुराण - 45/132, 89/ 239.
12- राजपथ विलास- 24.

[उत्तरकाण्ड] का प्रकाशन सन् 1910 के अक्टूबर मास में सम्पन्न हुआ। द्विवेदी जी संस्कृत एवं ज्योतिष विद्या के प्रकाण्ड विद्वान होने के अतिरिक्त हिन्दी के सुकवि और लेखक भी थे। राजा रामप्रताप सिंह से उनकी गहन मैत्री थी। इससे निश्चय है अब तो उन्होंने इस ग्रन्थ का सम्पादन किया होगा। इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने के पूर्व इसकी प्रतिलिपियाँ कुछ राजाओं ने कराईं और उन्हें अपने पुस्तकालयों में रखा जिसका विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में प्राप्त होता है।

जैसाकि कवि ने लिखा है कि उसने अपने को पावन करने के लिए इस राम कथा का गान किया है किन्तु इसके अतिरिक्त इस राम कथा-गान की कुछ अन्य प्रेरणाएँ भी हो सकती हैं जो इस प्रकार सम्भावित हैं -

[1] प्रथम प्रेरणा यह थी- सम्भवतः कवि ने अपने गुरु जी से वाल्मीकि रामायण की पूरी कथा सुनी और वाल्मीकि रामायण का अध्ययन भी किया। उसने सोचा कि इस वाल्मीकि रामकथा के अनुसार ही अपनी रामकथा भाषा [हिन्दी] में लिखूँ। उसकी इस प्रेरणा की पुष्टि के लिए कवि का कथन द्रष्टव्य है -

वाल्मीकि रचना सुनि देखी ।
भाखा करि रुचि भई विसेखी ॥
सोरठ राउ कृपानिधि पाई ।
भो उत्पन्न राम जस गाई ॥[13]

वैसे तो उन्होंने इस कथा को पार्वती- व शिव के संवाद के रूप में लिखा है जो अध्यात्म रामायण और बाद में गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस की परिपाटी है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं कवि ने प्रिये कहकर अपनी

13- वैसाख, दो0 46/2.

पत्नी को सम्बोधित किया है। इस प्रकार वाल्मीकि का आदि काव्य ही कवि के इस काव्य- संरचना का मूल प्रेरक है।

[2] मध्यकाल में रामकथा का जो व्यापक प्रचार और प्रसार हुआ और तुलसीदास का "रामचरित" मानस लोगों के हृदय में उतर कर जनमानस के कण्ठ का हार बन गया, उसको देखकर भक्ति और ज्ञान को पूज्यता रखने वाले विद्वान् राजाजनों में एक प्रबल इच्छा जागृत हुई कि हम भी राम- कथा लिखें और इस प्रसंग में रीवाँ नरेश, काशी नरेश, माण्डा नरेश के द्वारा रामकथा या भक्ति साहित्य लिखे जाने के उदाहरण विद्यमान हैं। इनमें ताल्लुकेदार बनादास का नाम विशेष उल्लेखनीय है। डॉ० भगवती प्रसाद सिंह द्वारा उनके साहित्य का विवेचन हुआ है। बनादास की प्रसिद्ध कृति है - "उभय प्रबोधक रामायण" यह रचना भी तुलसीदास की तरह दोहा- चौपाई,कवित्त, सवैया तथा अन्य छन्दों में है।

[3] हमारे कवि रुद्र प्रताप सिंह का इस ग्रन्थ के लिखने में एक दूसरी प्रेरणा ने भी काम किया, वह यह था कि श्रीराम कथा के माध्यम से अपने गुरुदेव आचार्य श्री रुद्रमणि से जो ज्ञान- विज्ञान भक्ति वैराग्य इत्यादि पढ़ा था उन सबको इसमें प्रकट रूप से निबद्ध कर राम-कथा में एक नवीनता पैदा करना चाहते थे। जैसे उन्होंने किष्किंधा काण्ड में राम-लक्ष्मण- संवाद के संदर्भ में आयुर्वेद का सारा वर्णन कर दिया है। प्रत्येक विश्राम में कहीं न कहीं कुछ ऐसी कथायें आ जाती हैं जिनकी तुलना वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलती और न ही अन्य रामकथाओं में प्राप्त होती है। ऐसा लगता है कि जो कथायें उन्होंने अपने गुरु जी से सुनी थीं, उन सबको उन्होंने इसमें जोड़ दिया है। जिनका वर्णन इस शोध- प्रबन्ध में यथास्थान होगा।

<u>एक महापुराण :-</u>

यह ग्रन्थ वस्तुतः एक महापुराण है, जिसमें नाना विषय और ज्ञान हैं। पुराणों में सृष्टि रचना और वंशानुचरित का जो वर्णन पाया जाता है उसका पूरा विस्तार इस रामकथा में है, और वंशानुचरित की दृष्टि से यह महा-

पुराण है ही। क्योंकि कवि ने भारत के राजवंशों का वर्णन अपने वर्तमान काल तक अत्यन्त रूप से किया है। जो भी उसे मालूम रहा उसको उसने स्वीकार किया है। कवि की दृष्टि अँग्रेज राज्य के प्रति क्यों रही है, उसके इस काव्य ग्रन्थ से प्रतीत होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि "राम-रूप" एक काव्य है अथवा पुराण ? या पुराण रूप में काव्य है। गोस्वामी तुलसीदास का "रामचरितमानस" तो निश्चित रूप से एक काव्य-रचना है। यद्यपि उसमें ज्ञान- विवेक, विरति- विज्ञान एवम् भक्ति का पूरी पूरी वर्णन किया गया है। तुलसीदास जन्मजात प्रतिभा- सम्पन्न कवि थे और उनकी सरस्वती लगती जैसी हुई अपने आप प्रवाहित होती है।राजा रुद्र प्रताप कोई सहज कवि नहीं हैं। आचार्य राजशेखर के अनुसार उन्हें व्युत्पत्तिमान् कवि[14] कहा जाना चाहिए। लेकिन व्युत्पत्तिमान् कवि के रूप में भी रुद्र प्रताप ने गुरु से प्राप्त ज्ञान को एक नूतन प्रबन्ध- रचना में निबद्ध किया, यह इस राम-रूप काव्य रचना की नवीनता है।

इसकी एक और नवीनता इसमें प्रयुक्त भाषा के स्वरूप की है। कवि की भाषा अवधी और बघेली की मिश्रित भाषा है जो बान्धव राज्य और उसके आस-पास बोली जाती है। कवि ने इस प्रकार इस भाषा को सदा के लिए इतिहास में सुरक्षित कर दिया है।

मेरा यह अध्ययन यद्यपि इस भाषा से कम सम्बन्ध रखता है फिर भी जगह-जगह उसका उल्लेख अवश्य करूँगा। मैं इस ग्रन्थ की रचना और विविध कथा-संदर्भों का आलोचनात्मक विश्लेषण करने का संकल्प लेकर इस शोध-कार्य में प्रवृत्त हो रहा हूँ। हमारा यह शोध-प्रबन्ध इस ग्रन्थ का पहला शोध ग्रन्थ होगा। क्योंकि अभी तक इस "[illegible] राम-रूप" का कोई अध्ययन और विश्लेषण किसी विद्वान द्वारा नहीं किया गया है। सौभाग्य सन् 1955 में ही जब

14- काव्य मीमांसा, अध्याय- 5.

शंकर त्रिपाठी का "हिन्दी का महापुराण" शीर्षक से इस ग्रन्थ पर एक विश्लेषणात्मक निबन्ध प्रयाग से प्रकाशित होने वाले "भारत" के रविवासरीय अंक में प्रकाशित हुआ था। उस निबन्ध को पढ़कर ही मुझे इस महाप्रबन्ध पर शोध-कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। यह आश्चर्य की बात है कि डॉ० कामिल फादर बुल्के ने अपने शोध-ग्रन्थ में इसका उल्लेख नहीं किया था।[15]

15- दैनिक "भारत" इलाहाबाद रविवासरीय परिशिष्ट, 12 जून 1955.

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

कथा, रामकथा और [illegible] राम- कथा

सामान्य रूप से पौराणिक कहानियों को कथा कहा जाता है। लेकिन कथा शब्द बाद में साहित्य शास्त्र की शब्दावली में दूसरे अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ कवि कल्पित संदर्भ या कहानी है। इसके बारे में आगे लिखा जायगा लेकिन परम्परा से यह बात सामान्य रूप से कही जाती रही। उसमें कथा का अर्थ प्राचीन आख्यानों या उदन्त वार्ताओं से होता है। महाभारत में तो परंपरा से आती ऐसी सभी प्राचीन कथाओं को इतिहास ही कहा गया है। यहाँ तक कि ब्याह, विवाह, जुआ, उत्सव, एक नेवला तक की कथा में पूरी तरह से राजनीति का पुट है। उसे भी पितामह भीष्म युधिष्ठिर से यही कहते हैं कि यहाँ इस प्रसंग में पृथ्वी पर इस इतिहास को लोग उद्धृत करते हैं। अर्थात् यह कहानी भी इतिहास है।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गौतमस्य च संवादं यमस्य च महात्मनः ॥

महाभारत के अनुसार इतिहास और ऐसी पुराण कथाओं में कोई अन्तर नहीं है। वह दोनों को ही इतिहास कहता है। पर बाद में पुराण की कहानियों और इतिहास के आख्यानों में अन्तर किया जाने लगा, जो कि स्वाभाविक है और स्पष्ट रूप से कहा गया कि -

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥

1- महाभारत - राजधर्मानुशासन पर्व, अध्याय- 29, श्लोक- 1.

अर्थात् इतिहास और पुराण दोनों को ही पढ़कर वेद के ज्ञान का विस्तार करना चाहिए। जिसे इतिहास और पुराण नहीं मालूम है वैसे अल्प ज्ञानी से वेद डरते हैं कि यह मेरे अर्थ का अनर्थ कर देगा। महाभारत की दृष्टि में जो कुछ प्रागैतिहासिक या ऐतिहासिक है वह सब कुछ इतिहास है। बाद में इनमें अंतर किया गया। प्राचीन कथाओं को पुराण और परम्परा जिनको जानती थी उनको इतिहास या आख्यान कहा गया है। इसलिए राम- कथा को रामाख्यान भी कहते हैं। महाभारत भी इतिहास या आख्यान है।

लेकिन बाद के युगों में विशेषकर मध्यकालीन इतिहास के ज़माने में राम का आख्यान इतिहास अथवा आख्यान से अपना रूप बदलने लगा और कथा की श्रेणी में पहुँच गया। अर्थात् उसमें अनेक कल्पित प्रसंगों का सन्निवेश किया गया। यह कल्पना कहीं कहीं अतिशयोक्ति की सीमा को लाँघ गई है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है -

अस मैं सुना श्रवण दसकंधर
पदुम अठारह जूथप बंदर ।।

अर्थात् कपि सेना में सेनापतियों की संख्या अठारह पद्म थी। और श्री-लक्ष्मण जी को शक्ति लगने पर हनुमान जी हिमगिरि की श्रेणी द्रोणाचल से संजीवन- बूटी लेने जाते हैं और अयोध्या के ऊपर जाते हुए भरत के बाणों से नीचे आ जाते हैं। आदि वस्तुतः ये सारे प्रसंग तुलसीदास को मध्यकाल के अपभ्रंश या प्राकृत काव्य ग्रन्थों से प्राप्त हुए होंगे जो इतिहास या आख्यान के ऊपर कोरी कल्पना की उपज मात्र है। यह तो गोस्वामी तुलसीदास की बात हुई, वैसे ही प्राकृत, अपभ्रंश, बंगला, तेलुगु, तमिल आदि भाषाओं में भी राम के आख्यान अर्थात् उनके इतिहास को कल्पना से मण्डित किया गया है।

राम का इतिहास बाद में इतिहास और पुराण दोनों का सम्मिलित संयोग बन गया। मध्यकाल और उसके अनन्तर के भारतीय कवियों ने राम कथा को अपनी रचना का विषय बनाया, उसमें इतिहास कम पुराण ही ज्यादा है। इसके

अनन्तर तो अपनी- अपनी दृष्टि से कवियों ने राम कथा का विस्तार किया। मूल रूप में वाल्मीकि-रामायण ही राम के आख्यान का प्रथम उत्स है। यहीं से राम-कथा की भव्य- भागीरथी प्रवाहित हुई है। इस प्रवाह में कितने विचारों युग के परिवर्तनों और कल्पनाओं का सम्मिश्रण हुआ है, यह अलग से शोध का विषय है, किन्तु इन सबके संगम से मूल प्रवाह के जल की स्वच्छता वही नहीं रह गई और स्वाद में भी अन्तर आया है यह सब मानना पड़ेगा। राम की कथा वैसे ही दुख सुख की गहन अनुभूतियों से हृदय को अनुरंजित करने वाली है। बाद में इसमें जो नव- नव कथा- प्रसंगों के सन्निवेश होते गये उससे इसकी अनुरंजन शक्ति और बढ़ती गई। अतः कथा का मुख्य प्राण जिसे कथा- रस कहते हैं उसकी उपस्थिति राम- कथा में अत्यन्त गहराई से है। कथा- रस का श्रेष्ठतम उदाहरण रामायणी कथा है।

काव्य-रस या नाट्य-रस के अतिरिक्त कवि के प्रबन्ध में कथा- रस वह तत्व है जो समूचे प्रबन्ध में आदि से अन्त तक व्याप्त रहता है। यथा-

" केऽप्यत्रे कथा रसे "

कथा-रस का महत्व नाटक, प्रबन्ध-काव्य यहाँ तक कि मुक्तकों के लिए भी सामान्य रूप से मान्य है। इस सम्बन्ध में एक आलोचक के विचार इस प्रकार हैं - "कथा- तत्व के साथ रस की व्याख्या अनुकूल है। यह बात तो आनन्द- वर्धन के इस कथन से ही सिद्ध है कि अमरुक कवि के एक एक मुक्तक एक एक प्रबन्ध है। पर कथा- रस का कुछ और ही अस्तित्व है, जो अभिनवगुप्त नाट्यरस या काव्य-रस से भिन्न सत्ता रखता है। प्रबन्ध- काव्य, आख्यायिका में सदैव कथा- रस का सन्निवेश होता है। बिना उसके प्रबन्ध- रचना का स्वरूप सजीव नहीं होता। कथारस से संवलित प्रबन्धों में काव्य-रस की अनुकूल युक्तियों का प्रयोग उनको महाकाव्य की संज्ञा देता है। नाटकों में भी कथा-रस के साथ अभिनय- व्यापार का नाट्य रस कहानी को नाटक बना देता है। अर्थात् कथा का स्वरूप महाकाव्य, नाटक और आख्यायिका में सर्वत्र प्रायः एक समान है तथा उसमें

निरन्तर अभिव्यक्त होने वाला कथा- रस ही उनको सजीव करता है। यह भी अनुभव सिद्ध बात है।[2]

कथा-रस साहित्य- रचना के एक मुख्य तत्व के रूप में प्रत्येक कवि की रचना में ओत-प्रोत रहा है। बिना कथा- रस की उपस्थिति के कवि की रचना में जीवनी- शक्ति नहीं आती है। इतने महत्वपूर्ण साहित्य-तत्व के बारे में विस्तार से कहीं साहित्य शास्त्र में नहीं मिलती। पहली बार डॉ० जयशंकर त्रिपाठी ने इस कथा- रस को साहित्य- रचना की आवश्यक शर्त के रूप में व्याख्यायित किया है, और इस दृष्टि से जब हम कवि रघु प्रताप सिंह के "वृसिद्धान्तोत्तम-राम-कण्ठ" का अवलोकन करते हैं और विवेचन करते हैं तो ऐसा लगता है कि कवि इस रामायणी कथा के अखण्ड कथा- रस का निर्वाह अपनी इस कृति में नहीं कर सका है। इस कृति के कथा- संदर्भों पर विचार करते हुए इस पक्ष की छान- बीन बहुत आवश्यक है कि रामायणी कथा में जो कथा- रस सहज रूप में उपस्थित है वह इस "राम-कण्ठ" कृति में छिन्न- भिन्न होता नजर क्यों आता है ?

इस छान- बीन में हमें इन तथ्यों की ओर ध्यान आकृष्ट करना पड़ता है-

1- कवि ने कथा-विन्यास में ऐसी पौराणिक तथा किन्हीं अन्य पद महत्वों से प्राप्त कथाओं को जोड़ने का प्रयत्न किया है जो सहज कथा- रस के प्रवाह में संगम नहीं करती है और पाठक को दूसरी ओर मोड़ देती हैं। वस्तुतः होना यह चाहिए था कि जो कुछ भी नए संदर्भ के रूप में जोड़े जाते वे कथा- रस के साथ सहज संगम करते। पाठक को अपनी मानसिक अनुभूतियों को सहसा विच्छिन्न न करना पड़ता। यथा स्थान ऐसी कथाओं का विवेचन किया जायगा। ये कथाएं महाभारत और कुछ अपरिचित पुराणों की हैं और कुछ ऐसे स्रोतों से हैं जिनके जानकार कवि के पूज्य गुरु स्वामी जी रहे होंगे। उनका उल्लेख प्रायः प्रसिद्ध पुराणों में देखा नहीं जा रहा है।

2- कवि ने पौराणिक शैली का अनुकरण ही किया है इसलिए भी कथा- रस विच्छिन्न हो गया है। उसने भूगोल खगोल पौराणिक वंशावलियों का उल्लेख कथा- रस के प्रवाह को अवरुद्ध करके लिखने की प्रवृत्ति अपनाई है।

3- किष्किन्धा काण्ड में आयुर्वेद का वर्णन अनावश्यक रूप से बहुत विस्तृत कर दिया गया है। राम- लक्ष्मण के संवाद में आयुर्वेद का यह विशद वर्णन कवि की अपनी विशिष्ट रुचि का परिचायक है। अच्छा यह होता कि आयुर्वेद का अलग से ग्रन्थ लिखा जाता। लेकिन हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि आयुर्वेद का यह वर्णन और उसके रस वर्णन का प्रसंग कल्पित कर लेना राज- कवि का परिचायक है। यह लोक प्रसिद्ध है कि राजा का चित्त नहीं जाना जाता। वैसे भी कवि रुद्रप्रताप भगवान श्रीराम के भक्त और ज्ञान तथा के भक्ति के जिज्ञासु हैं। उन्होंने अपने गुरु जी से वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त और भी धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन किया है और उस गुरु गृहीत ज्ञान को अपनी इस कृति में भाषा निबद्ध करना चाहते हैं। उनकी यह रुचि भी कथा- रस को विच्छिन्न करती है। क्योंकि कथा- रस ही काव्य का विषय है। काव्य भाव- व्यापार तथा ज्ञान बुद्धि- व्यापार का विषय है।

4- कथा- रस के भलीभाँति अवतरित न होने का यह भी एक मुख्य कारण है कि कवि की भाषा भावों के सर्वथा अनुरूप नहीं है। जहाँ अनुरूप है वहाँ काव्य- रस की अनोखी मिठास देखने को मिलती है और जहाँ कवि ज्ञानोन्मुख हुआ वहाँ भाषा कृत्रिम हो गई है। भाषा की कृत्रिमता कथा-रस को ठीक-ठीक अवतरित नहीं कर पाती। ऐसा लगता है कि भाषा के प्रयोग में कवि ने "रामचन्द्रिका" के रचयिता महाकवि केशव की अनुकृति की है।

जैसा कि कवि ने ग्रंथ के अंत में ज्ञान और भक्ति का निरूपण करने का बार-बार प्रयत्न किया है तथा वैष्णव- मत की स्थापना उसका लक्ष्य है, वह वैष्णव है। कवि वैष्णव मत के सम्बन्ध में अपनी जानकारी के अनुसार व्याख्यान करता है, इसमें कवि को सफलता प्राप्त हुई है। उसका कथा-विन्यास उसके इस दृष्टि-कोण को सार्थक करता है। कवि ने कहा है कि हमारा ग्रन्थ नौ पर्वों में विभक्त है। वह लिखता है -

कृष्णप्रताप त्रिपाल राम सुमिष्ट कारन करन ।
करन भूरि भव ताल देखो प्रा जानकि प्रभु ।।
- वंश पद, विश्राम- 2

कवि ने वाल्मीकि के आदि काव्य को पढ़कर के अपना यह "रामकाण्ड" काव्य लिखने का संकल्प किया। पूरे प्रबन्ध को भी पदों [खण्डों] अथवा [कि अध्य] में विभाजित किया है और पथ में चलते-चलते रुकावट आ जाने पर विश्राम भी करना चाहिए। अतः कवि ने पदों को विश्रामों में विभाजित किया है। कवि ने अपनी विनम्रशीलता प्रदर्शित की है और यह कहा है कि हमारी रचना में यदि कुछ गुण है तो उसका आदर हो। उसकी यही विनय भरी प्रस्तावना है -

कवि न होउँ नहिं कवित प्रवीना ।
भाव भेद भूषण तें होना ।।
रस न काव्य गुन कछु यहि माहीं ।
हरि अथवा येहि बढ़ि जन जाहीं ।।
कै अध्य विरचेउँ येहि माहीं ।
जनियहिं मन भ्रम कुछ हिय माहीं ।।
पद-पद प्रति रचि कछु विश्रामा ।
आदि पाइ कवि मधुर अरामा ।।
अ न तत न सुर हौं सुर न परम प्रवीन ।
केवल रघुवर यश रचौं भाषा ग्रन्थ नवीन ।।
- वंश-पद, दो0-46.

पद और विश्रामों का विवरण इस प्रकार है -

1- मिथिला पद [बाल काण्ड]
[वंश पद प्रथमोपाख्यान 27 विश्राम]

2- वंश पद द्वितीयोपाख्यान 19 विश्राम ।

3- कोसला पथ (अयोध्या काण्ड) 47 विश्राम।
4- अटवी पथ (अरण्य काण्ड) 27 विश्राम।
5- किष्किंधा पथ (पूर्वार्द्ध) 46 विश्राम।
6- किष्किंधा पथ (उत्तरार्द्ध) 72 विश्राम।
7- कूल पथ (सुन्दर काण्ड) 27 विश्राम।
8- युद्ध पथ (लंका काण्ड) 87 विश्राम।
9- राज-पथ (उत्तर काण्ड) 55 विश्राम।

इस ग्रन्थ की चर्चा पहली बार नागरी- प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में हुई। उसमें इसकी हस्त लिखित प्रतियों की चर्चा है। शायद उनको पता नहीं, किन्तु तब तक यह ग्रन्थ छप चुका था।

खोज रिपोर्ट का विवरण -

1- हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का विवरण (भाग-1) सम्पादक- डॉ० श्याम सुन्दर दास, बी०ए०, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ई०- 1930.
कोसलखण्ड - रघुराज सिंह कृत निर्माणकाल - सं० 1877 वि० वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, कोसल खण्ड का भावानुवाद (रीवां, छन्द- 25)

2- खोज में उपलब्ध - हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का 20वाँ त्रैवार्षिक विवरण, सं० 2004-2006 वि० (सन् 1947-8 49 वि०) (सन् 1947-49 ई०) द्वितीय भाग, सम्पादक- डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, सं०- 2034 वि० सुमित्रानन्दोत्सव राम खण्ड (उत्तरकाण्ड) रचयिता- रघुराज सिंह महाराज, निवास स्थान- बान्धव राज्य (भारत) कागज देशी, पत्र 246 आकार 13.5 × 10.5" पंक्ति (प्रति पृष्ठ) 20, चन्द्र प्रभा प्रेस, बनारस से प्रकाशित, परिमाण (अनुष्टुप)- 6130 पूर्ण प्राचीन, लिपि नागरी, रचनाकाल- सं० 1883 के लगभग, मुद्रणकाल सन् 1911 ई०। प्राप्तिस्थान- श्री महन्त जी पुजारी ग्राम- लाखाबाद, डाकखाना-मानिकपुर, जिला- प्रतापगढ़ आदि श्रीमन्महाराज, श्री महाराज रघुराज सिंह

साहित्यालोचन की दृष्टि से इस ग्रन्थ पर एक मात्र समीक्षात्मक निबन्ध डॉ० जयशंकर त्रिपाठी का प्राप्त है जो इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले दैनिक - समाचार- पत्र "भारत" में प्रकाशित हुआ था।[3] डॉ० त्रिपाठी ने अपने निबन्ध में इस सम्बन्ध में यह मत प्रतिपादित किया है और इसे उन्होंने हिन्दी का महा-पुराण कहा है -

"विषयों की इसी विशदता के कारण प्रस्तुत "राम-कण्ड" भी महापुराण की कोटि में आता है। मिथिला पद [बालकाण्ड] में तो सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर आदि सृष्टि, वंशानुचरित भूगोल और खगोल की विस्तृत भूमिका के साथ कथा-प्रबन्ध का प्रारम्भ होता है। राजपथ के वंशानुचरित में सूर्य और चन्द्र वंशी राजाओं की सीमा तक ही न रहकर ग्रन्थकार ने दिल्ली के ऐतिहासिक सभी वंशों का विस्तृत वर्णन किया है तथा अन्त में अपने राजवंश का भी संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है। जैसे "शिवपुराण" आदि में शिव चरित के प्रधान माध्यम से अवान्तर विषयों का वर्णन किया गया है वैसे ही इस ग्रन्थ में रामचरित के माध्यम से अधिक से अधिक विषयों की अवतारणा की गई है और यह अवतारणा भी बहुत विस्तृत है। साथ ही साथ जो चरित वर्णन किया गया है उसमें भी विषय का संकोच नहीं है।"

डॉ० त्रिपाठी के निबन्ध के पूर्व डॉ० फादर कामिल बुल्के ने "रामकथा" में[4] तथा डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपने "साहित्य का इतिहास"[5] में इसका नामोल्लेख किया है। बाद में डॉ० राम लखन पाण्डेय ने अपने "तुलसीदासोत्तर राम साहित्य" शोध प्रबन्ध में इस पर कुछ विशेष लिखा है।[6]

3- दैनिक भारत इलाहाबाद, रविवासरीय परिशिष्ट, 12 जून 1955 के अंक में "हिन्दी का महापुराण" लेख।

4- "रामकथा" का विकास तृतीय संस्करण - डॉ० फादर कामिल बुल्के, पृ०-

5- साहित्य का इतिहास - डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

6- तुलसीदासोत्तर हिन्दी राम साहित्य - डॉ० रामलखन पाण्डेय, पृ०- 42 से 48

कथा विन्यास और भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण इस विशाल प्रबन्ध काव्य पर पहली बार यह शोध-कार्य किया जा रहा है। मैं प्रयत्न करूँगा कि इन कथा-विन्यासों में आये हुए नूतन कथा संदर्भों के वैशिष्ट्य एवम् उनकी उपयुक्तता पर, जो कवि की अपनी उपलब्धि है, प्रकाश डालूँ तथा मेरा यह भी प्रयत्न रहेगा कि अवधी और बोली की जिस मिश्रित भाषा का रूप इस प्रबन्ध- काव्य में पाया जाता है उसके कुछ स्वरूप भी सामने ले आऊँ।

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

कवि ने बंश पद [मिथिला पद] अर्थात् रामायण के बाल-काण्ड का आरम्भ गुरु-पद-पद्म की वंदना से किया है। इसके पश्चात् गणेश की वंदना, सरस्वती जी की वन्दना और फिर अतुलित अक्षाम पवनसुत की वंदना की है। इसके बाद ब्रह्मादि देवता नारदादिक ऋषियों की वंदना कवि करता है। वाल्मीकि की वंदना कवि विशेष रूप से करता है और कहता है कि वे प्रथम राम-काव्यकर्त्ता हैं। उनके निर्माण के पथ का ही अनुसरण विशेषकर अनुवर्ती कवि करते हैं। वे रामायण के आचार्य हैं। उनके समान दूसरा और कवि नहीं हुआ जिससे रामचरित सागर का निर्माण किया गया हो। कवि लिखता है -

> वाल्मीकि मुनिराज प्रथम काव्य करतार जे ।
> वंदिय अखिल समाज जे जेहि के पद कवि गन कहत ।।
> रामायण आचार्य प्रथम दृष्टि जेहि कल्पना ।
> भयउ न कोउ अस आर्य रामचरित सागर कहन[1] ।।

यहाँ यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि कवि महर्षि वाल्मीकि की स्तुति करता है। उसने आगे स्पष्ट भी किया है कि अपने गुरु की कृपा से वह वाल्मीकि रामायण को ही भाषा काव्य में निबद्ध करने की रुचि रखता है-

> वाल्मीकि रचना शुभ देवी ।
> भाषा कर रुचि भई विसेषी ।।

उनके इस रामायण [राम खण्ड] महाप्रबन्ध का आधार वाल्मीकि रामायण ही है। कवि ने सन् 1920 ई० से इसकी रचना आरम्भ की। तब तक उत्तर भारत की समस्त जनता में तुलसीकृत "रामचरितमानस" का भलीभाँति प्रचार हो चुका था।

1- कृ० राम खण्ड - बंश पद, सो० 9 पद्य 10.

भक्तों में, सन्त मण्डली तथा जनता में भलीभाँति आदर था, यह सर्वविदित है लेकिन कवि ने गोस्वामी तुलसीदास का ग्रन्थ की प्रस्तावना में कहीं उल्लेख नहीं किया। कवि ने अपने ग्रन्थ को तुलसीदास की ही शैली पर यद्यपि दोहा, सोरठा, चौपाई आदि में छन्द-बद्ध किया है। कवि यह मंतव्य देता है कि वाल्मीकि-रामायण को "भाषा" में रचकर तुलसीदास के [हिन्दी भाषा] "रामचरितमानस" के समान ही वह एक नूतन लोकप्रिय काव्य की रचना करने जा रहा है।

इस वंश पद में उसने भगवान राम के बालचरित के साथ जिन विषयों का वर्णन किया है उसकी सूची सोरठा 19 से 22 तक में किया है। उसके अनुसार ज्ञान तत्व, भक्ति एवम् कर्म तत्व का वर्णन कर अपने पिता और कुल का वर्णन कवि करेगा। इस तरह विस्तार के साथ भूगोल और खगोल का वर्णन सूर्य एवम् चन्द्र वंश का वर्णन, ब्रह्मा, शिव और मनु का पौराणिक वर्णन कवि करेगा। महर्षि वाल्मीकि का मत और दूसरे पुराणों के मत इसमें वर्णित हैं। इस ग्रन्थ में उन रत्नों की खानि है जो रत्न मौक्तिक हेम की तरह पृथ्वियों के अलंकार होंगे। कवि कहता है कि जो मनुष्य इस ग्रन्थ को आदि से अन्त तक पढ़ेगा उसे वे सब दुर्लभ ज्ञान मिल जायेंगे जो अन्य शास्त्रों में हैं। कवि ने यह भी कहा है कि मैंने यह प्रयास इसलिए भी किया है जिससे रामायण की कथा को लोग भलीभाँति समझ सकें।

विधि हर मनु के भौन सुनी तीन कुल भूपवर ।
समुझहिं जेहि विधि लोग रामायन गाथा सुखद[2] ।।

कवि ने मिथिला पद [मिथि पद] को दो भागों में बाँट रखा है। दूसरे भाग को उसने द्वितीयोपाख्यान कहा है। द्वितीयोपाख्यान में ही वस्तुतः राम-जन्म

2- कु० रामचन्द्र वंश पद - सोरठा- 20.

की कथा का आरम्भ होता है। पहले भाग में 23 तथा दूसरे भाग में 19 विश्राम हैं। पहला भाग सम्पूर्ण ग्रन्थ की भूमिका के रूप में है जिसमें कवि वर्णन करता है कि इस कथा को शिवजी माँ पार्वती को सुनाते हैं। बीच में जो भी वक्ता प्रसंगवश कथा सुनाता है वह यही कहता है कि जैसा शिव जी ने पार्वती को सुनाया था वैसा कह रहा हूँ। अर्थात् ग्रन्थ की सम्पूर्ण कथा उमा- महेश्वर संवाद के रूप में प्रस्तुत की गई है। मिथिला खण्ड [प्रथम खण्ड] के पूर्वार्द्ध में भूगोल, खगोल का वर्णन और उसके केन्द्र में नारायण का वर्णन, यदुकुल का वर्णन और पाण्डवों के चरित्र का वर्णन कवि ने किया है। उत्तरार्द्ध के प्रसंगों में राम कथा के ही प्रसंग हैं।

पूरे मिथिला खण्ड में कथा के जिन मूल सन्दर्भों पर हमारा ध्यान जाता है वे सन्दर्भ हैं -

1- लोक की जिज्ञासा से नारद जी का अपने पिता ब्रह्मा से प्रश्न तथा कलियुग में रामकथा की महिमा का वर्णन ।

2- श्वेत द्वीप का वर्णन ।

3- सरयू नदी का उद्गम ।

4- भूगोल, खगोल एवम् ज्योतिष का निरूपण ।

5- पार्वती का प्रश्न और शिवजी द्वारा रामजन्म का वर्णन ।

6- मख देश और विश्वामित्र ।

7- राम के विवाह से लौटते समय परशुराम का आगमन। परशुराम के प्रसंग का विस्तार ।

इन कथा सन्दर्भों की मूल अवधारणा पर क्रमशः विवेचनात्मक प्रकाश डाला जा रहा है -

इस प्रसंग की उद्भावना पर कवि का लक्ष्य क्या रहा होगा, इस पर हमारा ध्यान जाना चाहिए। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने नारद-मोह का वर्णन किया है। कवि रघु प्रताप उसके उत्तर में यहाँ नारद मान का वर्णन कर रहे हैं ।

श्वेत द्वीप :- कवि ने बीस पद के चौथे विश्राम में श्वेत द्वीप का वर्णन किया है। इसमें श्वेत द्वीप का विशेष रूप से वर्णन है। यह वर्णन इस ग्रंथ का महत्वपूर्ण अध्याय है। कवि ने इसमें अपने आराध्य देव भगवान राम के विहित निवास का वर्णन किया है। जहाँ पर भगवान राम सदैव अपने पर्युपासकों के साथ निवास करते हैं और वहीं पर उनकी आह्लादिनी शक्ति श्री का भी निवास है। श्वेत द्वीप का विस्तार 32 लाख योजन है और वह चारों ओर वलयाकार क्षीर समुद्र से घिरा है। द्वीप के उत्तरी भाग में उसी समुद्र के तट पर सूर्य की आभा से युक्त भगवान राम रघुनन्दन की पुरी सुशोभित है। पुण्यात्मा नारी नर मृत्यु के उपरान्त इस पुरी में निवास करते हैं। इसी प्रकार इस पुरी में भगवान की ऐश्वर्यमयी श्री लक्ष्मी का निवास है जो नारीमय है।

श्वेत द्वीप का वर्णन महाभारत शान्तिपर्व के अध्याय 339 में पाया जाता है।[3] वहाँ पर भी वह नर नारायण का निवास है जहाँ के लोग पूर्णतः उज्ज्वल रंग के होते हैं। उन्हें भूख प्यास बाधित नहीं करती। उनके शरीर वज्र के समान पुष्ट होते हैं। किन्तु कवि ने इस प्रसंग का वर्णन अपने ढंग से किया है तथा देवी भागवत के अनुसार महिमामयी भगवती आदि शक्ति देवी का निवास मणिद्वीप कहा गया है -

मणि द्वीपे नीपे पवन वति चिन्तामणि गृहे ।
शिवाकारे मंचे परम शिव पर्यंक निलये ।।[4]

3- महाभारत शान्ति पर्व - अध्याय 339, श्लोक 8 से 12
4- देवी भागवत - सौन्दर्य लहरी

उक्त वर्णन को भी कवि ने भगवान रामचन्द्र के श्री के निवास में अनुकूल कर दिया है। इस प्रकार वंश पथ का यह श्वेत द्वीप वर्णन महाभारत के श्वेत द्वीप वर्णन तथा देवी भागवत के श्वेत द्वीप वर्णन का समन्वित रूप है।

श्वेत द्वीप में शाक नाम का एक अद्भुत वृक्ष है। कवि लिखता है कि उसकी एक एक शाखा एक एक योजन की है और उसके पत्ते एक एक वितस्ता के बराबर के हैं। सब ऐसे हैं जैसे नील गिरि की चोटी वहाँ के रहने वाले पशु परिवर्तन जरा मृत्यु से रहित हैं तथा शरीर से अत्यन्त हृष्ट पुष्ट हैं, केवल जप तप और योग करते हैं। यह वर्णन महाभारत के अनुसार ही है -

सकल सुलोचन कुरूप सोहैं ।
प्रभा अनंतक निशिकर होई ॥
पुत अमल शीतल जेहि छाया ।
शान्तिक तरु वर्जित जहँ माया ॥
नारायण रूप नर जैसे ।
नारी रमा समा सोहैं तैसे ॥
रितु विकार जहँ पर न देखाई ।
जरा मरन वर्जित सब भाई ॥
हिष्ट पुष्ट जहँ प्रजा समुदा ।
राग आदि कर जहँ नहिं मुदा ॥
करहिं योग जप तप अनुरागे ।
ध्यान ज्ञान हरि पर मन लागे ॥

- वंशपथ, पृ- 23

वैसे द्वीप के उत्तरी भाग में भगवान राम की पुरी है। बहुत विस्तृत है। अनेक प्रकार के सुसज्जित बाटों और द्वार हैं। द्वार के भीतर मणि और माणिक्य के बने हुए निवास स्थान हैं और वहीं पर प्रभु श्रीराम की लक्ष्मी का निवास है -

दीपौ तार क्योधि के तीरा ।
सुभग पुरी राजत रघुबीरा ।।
बहु विस्तीर्ण पुरी प्रभु केरी ।
स्वरन प्रकार चतुर दिसि घेरी ।।
विरचित बहु विधि बहु विधि द्वारे ।
मारतण्ड इव भास अपारे ।।
सकल पदारथ तहाँ लहावौं ।
अति सुकृती नारी नर जावौं ।।

*   *   *   *

पुर भीतर बर- भु- क्रिय सोहै ।
जाहि विलोकि अनादिक मोहै ।।

यहाँ कवि ने शक्ति के निवास को देवी भागवत में वर्णित शक्ति के निवास से प्रभावित होकर नृत्य गान में प्रवीण युवतियों का वर्णन किया है जो नृत्य गान से प्रभु राम को प्रसन्न करती हैं। यथा-

तारापति बदनी बहु बाला ।
सजि भूषन दुकूल सुविशाला ।।
नृत्य गान करि हरिहिं रिझावहिं ।
अति अकथ्य प्रश्रयहि नित पावहिं ।।

साथ ही कवि ने यह भी वर्णन किया है कि भगवान का वह विलास भवन इन्द्र के सुधर्मा भवन [सभा] को भी लज्जित करता है। जहाँ पर वैष्णव धर्म को मानने वाले जो महापुरुष बैठे हैं वे सब इन्द्र से भी बढ़कर हैं -

अति विचित्र नहिं बरनि सिराई ।
लखत सुधर्मा सभा लजाई ।।
बैठे हैं भागवत प्रधाना ।
एक एक सक्रा सो माना ।।

शेष वर्णन वेद और पुराणों के अनुसार ही है कि भगवान राम का वह स्थान सृष्टि और लय से परे है -

जहाँ न आदि मध्य लय होई ।
आदि मध्य करता पुर सोई ।।

फिर वैष्णो के भक्ति दोष से प्रभावित होकर कवि कहता है कि रम्भा और रमा के समान करोड़ों कन्यायें सीता के समीप हाथों में जल भरे कलश और सुराहियाँ लिये खड़ी हैं। कवि लिखता है -

गावहिं महाशुभ महाविष्णु,
दिव्याह सखि ठाढ़ी रहैं ।
शिव- परब्रह्म पति जेहि ,
तुव नायिक बेद जहैं ।।
रम्भा रमा सम कोटि कन्या,
सीय ढिंग ठाढ़ी रहैं ।
कर पानि कलश सनेह ,
बहु कर ललित कर झारी गहैं।।

कवि ने यहाँ पर यह लोकोत्तर वर्णन करने में भूल की है। वह नहीं जानता कि इन लोकोत्तर देव- देवियों के निवास में जल भरे कलश और सुराही की आवश्यकता नहीं होती। कलश और सुराही को का काज समाज मानव लोक का है। वहाँ पर तो जब जैसी इच्छा हो पारिजात जैसे लोकोत्तर वृक्ष अपनी डालों से शीतल जल की धार ही नहीं सुधा की धार गिराने लगते हैं। कल्पवृक्ष बिखरते हुए फूल उनमें खिल उठते हैं। इससे अच्छा तो देवलोक का लोकोत्तर वर्णन कालिदास के उत्तरमेघ का है जहाँ कल्पद्रुम यक्ष ललनाओं की सारी इच्छायें पूरी करता रहता है।[3]

3- उत्तरमेघ - श्लोक - 10.

आगे कवि ने भगवान श्रीराम के निवास का और भी लोकोत्तर वर्णन किया है। तदनन्तर वह राम के क्रियाकलाप और उनके लोकोपकारी चरित्र का वर्णन करना प्रारम्भ करता है जिसके संदर्भ में ही वह राम-जन्म का वर्णन करेगा। वह कहता है कि जब पृथ्वी का भार बढ़ जाता है तब देवता लोग यहाँ आकर पुकारते हैं और जब जैसा हुआ वैसे भगवान ने अवतार लेकर पृथ्वी के भार को हरण किया। यहाँ इस प्रसंग का वर्णन करते हुए कवि ने देवी भागवत और श्रीमद्भागवत के अवतार वर्णनों का मिश्रित वर्णन किया है। मधु कैटभ को मारने के लिए आद्या शक्ति कैसे प्रकट हुई, कवि ने सबसे पहले इसका वर्णन किया है -

येहि प्रकार सोभ नगर सोहाय ।
फिर करत जुग भाल बनाय ॥
जब जब भार भूरि महि मारीं ।
तब तब देव राम पुर जाहीं ॥
ब्रह्मा हिं नाभि पद्म ते के भाई ।
मैं विधि जुग जुग जुग गुन्हिराई ॥
विष्णु करन भल आतुर आय ।
मधु कैटभ अस नाम कहाय ॥
ते विरंचि कहँ भखन लागे ।
आद्या करि पुरान मर जागे ॥
मधु कैटभ करि जुद्ध संघारा ।
तासु मेद मेदिनी सो धारा ॥

इसके अनन्तर फिर राम ने मत्स्यावतार धारण किया -

करि मछरी-तनु तब रघुराई ।
मनु नायक श्रुति लौं आई ॥

इस प्रकार अवतारों का वर्णन करते हुए कवि ने राम के पूर्व अवतार जाम-दग्नि परशुराम के अवतार का वर्णन कर इस वर्णन पर समाप्त किया और कहा कि राम अपने इस श्वेत द्वीप के नगर से अनेक रूप में पृथ्वी पर अवतरित होते हैं -

> जामदग्नि तनु लीन्ह दिवाता ।
> इतेउ असुर रूपी महिपाता ॥
> सो सब कहि पुराण मत वका ।
> तेहि पुर तें प्रभु होहिं अनेका ॥

इस प्रकार भगवान राम का निवास इस सृष्टि से सर्वथा अलग है और देवों के कार्य के निमित्त भूमि का भार उतारने के लिए वे अवतार लेते हैं। यह बात तीसरे विश्राम में भी कवि ने कही है। यथा-

> देवी सेवत रूप हरि भूप रूप भगवान ।
> यह ब्रह्माण्ड कटाह ते परे राम अस्थान ॥ - दो० 76.
> अथा अंड मो अंड कर तिमि कटाह ते भिन्न ।
> यह लीला पुर कार्य हित राम विश्व अवछिन्न ॥ - दो० 77.

इस तरह से भगवान राम के अवतार की प्रस्तावना के रूप में यह श्वेत द्वीप का वर्णन है। यद्यपि कवि ने वाल्मीकि रामायण को ही अपनी रचना का पूर्ण आधार बनाया है लेकिन श्वेत द्वीप के इस वर्णन को, अन्य पुराणों और कथा-प्रसंगों को लेकर अपने ढंग से सुनियोजित कर प्रस्तुत किया है और जिसमें ही यहाँ राम के लोक में भी एक लोकोत्तर स्थान निरूपित किया है जो श्वेत द्वीप के उत्तरी भाग में है।

सरयू जन्म :-

कवि रूपप्रताप ने अयोध्या पुरी के वर्णन के साथ सरयू नदी के जन्म की बात कही है। उनके अनुसार सरयू नदी पहले नहीं थी। मनु के पुत्र इक्ष्वाकु ने जल के लिए प्रजा को व्याकुल देखकर हिमालय के मानस- तड़ाग से सरयू नदी को अयोध्या में लाये। कवि ने इस कहानी को रूद्रयामल के कोशल- खण्ड से लिया है। इस अवधपुरी के पहले राजा वैवस्वत मनु सूर्य जी ब्रह्मा के द्वितीय परार्ध के महात्मा राजपुरुष थे। इन्हें अयोध्या का राजा प्रजा ने बनाया। कवि ने लिखा है -

यह सुनी परार्ध तब आवा ।
भे वैवस्वत मनु नृप नामा।।
करि अभिषेक अवध विधि सारे ।
रत्न मुकुट आसन बैठाई ।।
करहिं उपासन प्रजा सुजाना ।
अस्तुति करहिं बंदि सुत नाना।।
वशिष्ठ वरिष्ठादिक मुनि जैसे ।
आशिष देहिं बहुत विधि तैसे ।।

मनु के पुत्र इक्ष्वाकु थे और उन्हें श्रेष्ठ पुत्र जानकर मनु ने अवध का राज्य सौंप उन्हें दिया। इक्ष्वाकु के राज्य में प्रजा बहुत सुखी थी। किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। लेकिन कुएं के जल से प्रजा की संतुष्टि नहीं होती थी। क्योंकि वहाँ पर बिना किसी नदी के अयोध्या पुरी जल के बिना दुखी थी। यथा-

इक्ष्वाकुहिं मनु कर सुत जानी ।
दीन्हेउ राजहिं अवध रजधानी ।।
रवि कर मनु बहु प्रजा सुखुआ ।
आकुल भय तहाँ कूप कूआ ।।

* * * * *

सब सम्पन्न अशोक पुर कछु क्लेश नहिं होय ।
महापापिनी वारि बिनु पुरी कलंकित होय।।[6]

तब यह क्लेश दूर करने के लिए महाराज इक्ष्वाकु गुरु वशिष्ठ के पास गये। गुरु वशिष्ठ ने राजा की प्रार्थना सुनकर एक पवित्र नदी को अवतरित कर अयोध्या में लाने का निश्चय किया। और वे उत्तर दिशा में हिमाचल पहाड़ के मध्य अव-स्थित मानस- तड़ाग तक गये। उस तड़ाग के उत्तर श्री राम का निवास अवलोका जिसे देखकर वे बहुत मुदित हुए फिर राम से अवधपुरी की महिमा प्रकट की और राम के आदेश से मानस तड़ाग में स्थित सरयू नदी को अयोध्या चलने की प्रार्थना की। इस प्रकार सरयू नदी का आगमन अवधपुरी में हुआ ।

यह वर्णन पार्वती और शिव के संवाद के रूप में कहा गया है। इसमें अवधपुरी की प्रशंसा एवम् सरयू नदी की महिमा का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है।

3774-10/5259

रुद्रयामल के इस प्रकार से सरयू नदी के ले आने का रहस्य क्या है? इसका कुछ तांत्रिक रहस्य हो सकता है। उसे तन्त्र के विज्ञ लोग ही जान सकते हैं। लेकिन अवधपुरी बिना नदी के थी और इक्ष्वाकु के समय में वशिष्ठ सरयू नदी को ले आए तब नदी के तट पर अयोध्या शोभित हुई, यह बात भूगोल, इतिहास और वाल्मीकि रामायण के अनुसार गलत है। अवध या कोशल जनपद में सरयू नदी उसकी भौगोलिक रचना के साथ ही विद्यमान है। वाल्मीकि ने लिखा है कि मनु के समय से अयोध्या और सरयू नदी है -

कोसलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान् ।
निविष्टः सरयू तीरे प्रभूत धन धान्यवान् ।।
अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोक विश्रुता ।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् [7] ।।

56088
ALLAHABAD.

6- रुद्रयामलोक्त रामखण्ड पंच पद, दोहा - 203.
7- वाल्मीकि रामायण- बालकाण्ड पंचम सर्ग, श्लोक 5 एवम् 6.

सरयू नदी को वशिष्ठ इक्ष्वाकु की प्रार्थना पर ले आए, थोड़ा इस रहस्य पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। यह बहुत सम्भव है कि जो नदी अयोध्यापुरी में प्रवाहित थी उसका कुछ और नाम रहा हो और महाराज इक्ष्वाकु ने उसका नामकरण सरयू किया हो। यह भी सम्भव हो सकता है कि मानसरोवर से निकट प्रवाहित किसी पवित्र स्रोत को उस पुरा काल में इस नदी में मिलाया गया हो। इस प्रकार इसका सरयू नाम हुआ हो। वर्तमान स्थिति के अनुसार सरयू नदी हिमालय से निकलती है। सम्भवतः मानसरोवर का कोई स्रोत इसमें मिला हुआ जान पड़ता है। उसी कारण इसकी पवित्रता स्थापित हुई ।

भूगोल - खगोल वर्णन :-

कविवर रघुनाथ ने अपने इस राम- काव्य में राजवंश, भूगोल और खगोल का विस्तार से वर्णन कर अपनी इस रचना को काव्य से पुराण की श्रेणी में स्थानान्तरित कर दिया है। बालकाण्ड वंश- पद के विश्राम 9 से लेकर विश्राम 27 तक कवि ने यह सब वर्णन विस्तार के साथ किया है। फिर 28वें विश्राम से पार्वती के प्रश्न एवम् शिवजी के उत्तर के साथ राम की कथा आरम्भ होती है। पुराण के लक्षण में कहा गया है -

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुकीर्तनम् चैव पुराणं पंच लक्षणम्[1] ।।

पुराण का यह लक्षण इस "[illegible]-राम- खण्ड" पर पूर्णरूप से घटित होता है और विशेष रूप से किष्किंधा पद में आयुर्वेद का विशद वर्णन इसे और भी पुराण के निकट खड़ा कर देता है। लेकिन जहाँ कवि महर्षि वाल्मीकि के रामा-यण का अनुसरण करता है और भावों की अभिव्यक्ति की ओर उसका मानस उन्मुख

1- साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ

है यहाँ पर व वह काव्य की रचना करता है। इस प्रकार यह रचना काव्य और पुराण का पवित्र संगम है।

इस प्रकार ग्रंथ पद के ये विश्राम विशेष रूप से हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं और इनके वर्णन कथा के नये प्रसंगों को आरम्भ करते हैं -

विश्राम 11 में सूर्यवंशी राजाओं और भरत- खण्ड का वर्णन

विश्राम 12 में जम्बू द्वीप का वर्णन

विश्राम 13 में भूगोल वर्णन

विश्राम 14 में खगोल वर्णन

विश्राम 15 में ज्योतिष का निरूपण

विश्राम 16 में ज्योतिष का एवम् दशरथ नगर निरूपण ।

कवि का भरत-खण्ड का वर्णन अत्यन्त मनोहर एवम् पठनीय है। यह वर्णन भारत राष्ट्र का पूर्ण परिचय देता है। भरत- खण्ड का वर्णन करते हुए कवि लिखता है -

सुनिय भरत महि केर प्रमाना ।
जेहि विधि बरनत कीन्ह पुराना ॥
पूर्व किरात प्रजन्त सोहाय ।
पश्चिम रोमक यवन गनाय ॥
दक्षिण द्वारावती प्रमाना ।
उत्तर देश हिमाद्रि बखाना ॥
मध्य दिसि सिंधु अनुज सम सोहै।
प्रत्यंचा सुभाय गिरि जोहै ॥
यहि विधि भरत खण्ड परिमाना ।
कही मुनि जेहि वेद बखाना ॥
उभय पुहुप कहँ पुरहिं लोका ।
तहि निज कर्म भोग बिनु सोकाँ[1] ॥

1- कृ० रामखण्ड, विश्राम- 11।

पुण्या शिप्रा अरु विशाला ।
विन्ध्य बदन उद्भव मधिपाला ।।
सोनभद्रनिकसतो नर्मदा ।
ये निकसहिं सब विन्ध्य निकेता ।।
भीमरथी कृष्णा अरु भद्रा ।
गोदावरी बेंकुला भद्रा ।।

कुरुगंग अरु वेनु जोष पुण्योदक तरि भाग[10] ।
तत्कगाम निर्मल सकल पुण्यद जल सुखकारि ।।

इसमें छोटी- छोटी नदियों का नाम भी कवि ने दिया है। यहाँ पर वेद- वती, सिन्धु, चर्मण्वती, शिप्रा आदि सब मालवा प्रदेश में बहने वाली नदिया हैं। ये वेदवती और सिन्ध बहुत छोटी नदियाँ हैं जिनका वर्णन कालिदास ने मेघदूत में और सिन्ध नाम से किया है। सिन्ध को आजकल काली सिन्ध कहते हैं। ये नदियाँ शिप्रा की सहायक हैं। विन्ध्य में प्रवाहित होने वाली नदियों का कवि ने विस्तार से वर्णन किया है।

भरत खण्ड के वायव देश के वर्णन में कवि पारस, ईराक, अरब तक के देशों का वर्णन करता है और यह बिल्कुल पुराणों के आधार पर है। भरत- खण्ड का वर्णन इस ग्रन्थ का विशिष्ट प्रसंग है।

विश्राम 12 और 13 में जम्बू द्वीप और भूगोल का वर्णन कवि ने किया है। यह वर्णन निश्चित रूप से पुराणों से लिए गये हैं लेकिन कवि ने अनेक नई बातें इन वर्णनों में दिये हैं, जिनका मूल स्रोत कहाँ तक है, कहा नहीं जा सकता। जैसे - उत्तर दिशा में सिं कुरु- खण्ड का वर्णन करते हुए रत्नों से भरे पर्वतों का वर्णन किया है। इसके उपरान्त उसने पर्वतों के नाम भी दिये हैं। तदनन्तर उसने वहाँ की नदियों के नाम दिये हैं जो इस प्रकार हैं -

---

10- कु रामखण्ड बीस पद, दोहा - 232.

प्रवासी बनकर रह जाना, इसके अनेक ऐतिहासिक प्रमाण विद्यमान हैं। यह एक द्वीप पुष्कर द्वीप से लगा हुआ है। पुष्कर द्वीप के राजा का नाम मदन और उनके महावीर एवम् वातकी दो पुत्र हैं। उस द्वीप में एक ही पर्वत है। वहाँ के लोग एक हजार वर्ष जीते हैं। उन्हें न रोग होता है, न वियोग होता है और न वृद्धावस्था ही आती है। वहाँ पर ब्राह्मण आदि वर्ण का विचार नहीं है। सभी भेदभाव विहीन हैं। वहाँ न दूसरी नदी है न पर्वत हैं। लेकिन पृथ्वी स्वर्ग के समान है। मनोवांछित भोजन और पानी वहाँ मिला करता है। विश्राम 13 के दोहा 269 एवम् 270 में जो वर्णन है वह वर्तमान यूरोप रूस से मेल खाता है।

खगोल के वर्णन में कवि ने लम्बा विस्तार किया है। इसमें नक्षत्रों की दूरी, आकाश में तारालोक आदि का विस्तृत वर्णन जो कवि ने किया है वह कहीं अन्य प्राप्त नहीं है। ऐसा लगता है कि किन्हीं अन्य ग्रन्थों से कवि ने लिया है। विश्राम 14 और 15 में क्रमशः खगोल एवम् ज्योतिष चक्र का वर्णन है। ज्योतिष चक्र के वर्णन में और भी बारीकी से बातें कही गई हैं। ज्योतिष चक्र के निरूपण में कई नई बातें कही गई हैं, जिनके प्रमाण कवि जानता रहा होगा। प्रचलित ग्रंथों में ये चीजें मिलती नहीं हैं लेकिन बातें सही हैं। कवि ने एक अच्छी बात लिखी है जो आज बहुत कुछ विज्ञान से भी प्रमाणित है और कुछ कवि की कल्पना है। कवि कहता है कि सूर्य ध्रुव को आधार मानकर भ्रमण करते हैं और ध्रुव एवम् सूर्य के बीच जो वात का चक्र है वही वर्षा आदि का कारण बनता है -

दिन रजनि नित ध्रुव आधार ।
ग्रह नक्षत्रैं फिरत सब गाये ।।
नभ दिशि ध्रुव के अन्तर जोई ।
परिवह वात कहत सब कोई ।।
वहि विधि होवैं दोष अपारी।
है लोक का कारण भारी ।।

तेहि शरीर मध राम निरूपा ।
सुमिरि ध्रुव जिमि लख मुनि भूपा ।।
ध्रुवाधार करि भानु प्रमानौं ।
जुग विधि आठ मास बखानौं [13] ।।

इसमें उल्लेखनीय बात यह कि ध्रुव को आधार मानकर सूर्य भ्रमण करते हैं - यह बात बहुत कुछ विज्ञान भी मानता है।

इक्ष्वाकु वंश का विशेष रूप से तथा यदुकुल और पाण्डव राजवंश का वर्णन भी कवि ने आगे के विश्रामों में किया है। इन वर्णनों से पुराण के स्वरूप की सारी प्रक्रिया पूरी हो जाती है। तदनन्तर 28वें विश्राम से कवि ने राम-कथा का आरम्भ किया है।

राम- जन्म :-

राम कथा का आरम्भ पार्वती और शिव के संवाद से कवि करता है -

अष्टविंश विश्राम यों गिरि कन्यका सुजान ।
करेउ प्रश्न बरनन करौ पारबती भगवान ।। - दो०- 539

पाँच विश्रामों में राम- कथा का उपक्रम कवि ने बाँधा है। इसमें निम्न कथाओं का सन्निवेश कथावस्तु के विन्यास में आता है।

{1} दक्ष-यज्ञ में सती का शरीर त्याग -

उस समय भूतभावन सती के विरह में घूमते हुए नीलगिरि पर आ गये थे। वहाँ नील पर्वत पर काक भुशुण्डि पक्षियों को कथा सुना रहे थे। शिव ने वह स्थल और पुण्य कथा का वह प्रसंग देखा। इस प्रसंग में शंकर पार्वती से कहते काग-

13- श्री राम कथ वैभव, पृ०- 134.

भुशुण्डि मैं भगवान राम का दर्शन करते हैं और कहते हैं कि नारी को माया मैं अभिमान छोड़कर ही मुझे उस मायापति का ज्ञान हुआ। यहाँ पर पुनः पार्वती का जन्म और पार्वती की कथा नहीं आती। पार्वती फिर भगवान आशुतोष से प्रश्न करती हैं कि जिन राम की आप इतनी महिमा गा रहे हैं, जो रमापति हैं, उन्होंने किस कारण से नर का रूप धारण किया और वन-वन में भटककर और कलेश उठाया ? -

कैसे राम रमापति होई ।
भाग्यवान नारायन होई ॥
केहि कारन होइ नर तन होई ।
सहेउ कलेस और तप होई ॥

कहहु कृपा करि नाथ अब रमानाथ की गाथ ।[14]
भ्रम भंजन रंजन जगत भव भंजन गुन गाथ ॥

2- रावण के वंश का वर्णन :-

रावण विश्रवा का पुत्र है। इसमें कवि ने विश्रवा का पूरा वृत्तान्त दिया है। पहले उनका विवाह भरद्वाज की कन्या इलविला के साथ हुआ था। बाद में भाग्यवान की पुत्री कैकसी और निकिषा के साथ उनका विवाह हुआ। यह विवाह सामान्य तौर पर नहीं हुआ। विश्रवा को स्वीकार नहीं था और उन्होंने कहा कि तुम्हारी कन्याएँ प्रबल हैं, मेरा विवाह करना उचित नहीं है। इस प्रसंग में कवि ने अपने वर्तमान युग को देखते हुए चित्रण प्रस्तुत किया है। जैसे किसी दरिद्र ब्राह्मण को कोई राजा अपनी कन्या ब्याहना चाहे और वह न करे तो राजा किस प्रकार ब्राह्मण को डाँटेगा, उसी प्रकार का वर्णन कवि ने यहाँ चित्रित किया है -

कहेउ मुनीसहिं असुर-वर मम दोउ कुमारि ।[15]
तुम्हहिं दीन्ह याचति स्वपति हुआ करोहु कारि ॥

14- वृ० रामखण्ड, अध्याय, दोहा- 349.
15- वही, दोहा - 357.

एवमस्तु कहि गये सब कल्नो ।
कई ऋषि मुनि ता पुर बस्नो ।।
रावन सरिस सेतु यह बाँधा ।
कीन्हेउ पद्मोद्भव सेवि बाँधा ।।[17]

यद्यपि कवि 19वीं शताब्दी में इस रामकथा को लिख रहा है लेकिन उसने राम के युग की जो यह बात कही कि रावण के विचार में मनुष्य और वानर समाज की कोई क्षमता राक्षसों के आगे नहीं थी। वे उनके लिए तृणवत् समझते थे। वाल्मीकि रामायण के वर्णन के अनुसार भी राक्षसों की समृद्धि बहुत बढ़ी थी।

4- इसी प्रसंग में दशरथ द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराने की कथा आती है। उसमें शृंगी ऋषि की कथा आती है। जिनके साथ दशरथ की पुत्री शान्ता का विवाह हुआ था। इस प्रसंग में कवि ने महाभारत के उस आख्यान को प्रस्तुत किया है जिसमें यह आता है कि शृंगी- ऋषि के आने से जहाँ अकाल पड़ा था वहाँ वर्षा होने लगी। शृंगी ऋषि का आना बहुत असम्भव था। उनको ले आने का काम एक युवती वेश्या ने किया। इस कथा को यहाँ लिख कर अधिक से अधिक कथा-प्रसंगों को विन्यस्त करने की कवि की रुचि प्रकट होती है।[18]

5- इस प्रसंग में वामन परशुराम आदि अवतारों की कथा भी कवि ने विस्तार से गाई है।

6- इतने सारे कथास्थलों के बाद रावण के अत्याचार से पृथ्वी की दुर्गति को विकल देव ब्रह्मा विष्णु के पास विनय करने जाते हैं कि आप रावण के पाप से पृथ्वी का उद्धार कीजिए। यह ध्यान देने की बात है कि महाराज दशरथ को यज्ञ होने के बाद ब्रह्मा विष्णु के पास गये हैं। यहाँ पर "रामचरितमानस" के अनुकरण पर कवि ने ब्रह्मा द्वारा भगवान विष्णु की विस्तृत स्तुति कराई है। उसकी कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं -

---

17- वृ0 रामायण, बालकाण्ड, दोहा- 229, 230, 231.
18- महाभारत

तुम जगत निवासी विश्व विलासी अज अविनाशी श्रुति भनन ।
शंकर अज किंकर हरि पद विस्तर वारिधि उर हर ओर भरन् ॥
ऐश्वर्य प्रकाशक जन अभ्यासक असुर सुनाशक घोर हरन् ।
वैराग्य त्रिभुवन कन जेहि पूजन हन जिन दूजन जोर जरन् ॥
अनंत अकाया निष्क्रिय माया प्रभु सब दाया माय कमन् ।
माया बिनु माया माया भाया जगत लोभाया श्रुति तमन् ॥
वारनीश अगोचर विश्व उदर धर हर विरंचि कर कीर्ति करन् ।
नाना शिर बाहु चरन लोचन त्रिग अखिलाधु श्रुति करन्[19] ॥

ब्रह्मा की विनती सुनकर भगवान विष्णु प्रकट हुए। भगवान विष्णु के माधुर्य एवं सौन्दर्य का वर्णन कवि ने मनोहर उत्प्रेक्षाओं एवम् नई उपमाओं से किया है। यह पठनीय है तथा काव्यगत सौन्दर्य की दृष्टि से यह एक उत्तम रचना है। कवि लिखता है कि भगवान् विष्णु अपनी प्रिया लक्ष्मी के साथ गरुड़ पर आरूढ़ होकर प्रकट हुए उनको देखकर देवताओं का दुःख ऐसे दूर हो गया जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार मिट जाता है -

जेहि प्रकार अति रमापति प्रिय सह खग आसीन ।
उदय भान रवि उदित से दुर दुख तम सम कीन[20] ॥

ब्रह्मा ने फिर स्तुति की और कहा कि इस रावण का विनाश करने के लिए नर शरीर धारण कीजिए। भगवान विष्णु ने कहा ठीक है। मैंने कश्यपि के पुत्र कश्यप को वरदान दिया था कि मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा, वही दशरथ नाम से राजा हुए हैं। मुझे उनके पुत्र के रूप में जन्म लेना है और इस प्रकार देवों का काम भी करना है। दशरथ की तीन रानियों से मैं चार शरीर में प्रकट होऊँगा और मेरी आदि शक्ति राजा मिथिला के यहाँ प्रकट होगी । यथा -

---

19- गुरु रामायण, बालकाण्ड, छन्द- 77, 78.
20- वही, दोहा- 624.

तेहि सब चरित अनेक करउं बर्न्न जौनो विविध ।
जो सेवहि सविवेक ताहि मुक्ति देती सरित ॥
इति अदेव मधुराय पद सकल कंचन अली ।
सेव पंच दसराय पुनि आउब मिस काम कहूँ[21] ॥

यहाँ पर कवि ने अपने मन की बात कही है। इन प्रसंगों के साथ अगले विश्राम में राम के जन्म का वर्णन है। जो बातें वाल्मीकि रामायण में कही गई हैं उनको कहते हुए कवि ने अपनी भक्ति की कल्पनाओं का विस्तार किया है। तुलसीकृत रामचरितमानस के अनुकरण पर उनकी अच्छी स्तुतियाँ भी की हैं। कवि ने लिखा है -

निर्मोत्तम नखत सोहाए ।
जन्म कुँवर रमापति आए॥

यह वाल्मीकि रामायण के आधार पर है।

इसके आगे के विश्राम में कवि ने भगवान के जन्म के छठें दिन का कृत्य, नामकरण, चूड़ाकरण, अन्नप्राशन आदि का वर्णन किया है। ये विस्तार कवि ने अपने युग के अनुसार किये हैं।

प्रथम सात विश्रामों में भी राम-जन्म की कथा का उपोद्घात और राम-जन्म का वर्णन कवि ने अनेक कथा प्रसंगों को जोड़ते हुए किया है। राम का जन्म पुराण अथवा इतिहास की एक महान् लोकोत्तर घटना है, यह तो मानना ही पड़ेगा। ऐसी महान् प्रकाश के अवतरित होने में कोई एक कारण नहीं हो सकता। अनेक कारण होने ही चाहिए। कवि ने अनेक कारणों को इस प्रसंग में उपयुक्त करते हुए कवि की साहस रचना का परिचय दिया है। इससे उसके कथा कहने का कौशल प्रकट होता है।

21- कृ रामायण, पंचम, सोरठा - 627, 628.

विश्वामित्र, करूष देश, ताड़का वध :-

ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध, विश्राम 3 से क्रमानुसार पैंतीसवें विश्राम में ऋषि विश्वामित्र का अयोध्या आकर राजा दशरथ से अपने यज्ञ के रक्षार्थ राम-लक्ष्मण को मांगने की कथा आती है। राम लक्ष्मण उनके साथ जाते हैं। ताड़का को मारते हैं तथा आगे बढ़कर मिथिला की ओर गमन करते हैं। मार्ग में अहिल्या का उद्धार करते हैं। मिथिला में धनुष भंग कर सीता से विवाह करते हैं। राम- कथा के ये प्रसंग अति प्रसिद्ध हैं। यद्यपि बाद के राम कथा- काव्य के लिखने वाले कवियों ने कथा को अपने ढंग से कल्पना एवम् काव्य- सौन्दर्य से मण्डित किया है, किन्तु महर्षि वाल्मीकि ने जिस ढंग से इस प्रसंग का वर्णन करते हुए तत्कालीन भौगोलिक स्थिति को वर्णित किया है, कवि रुद्र प्रताप भी उसका ध्यान रखते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है कि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण के साथ सरयू तट से होते हुए गंगा नदी को पार किये और वे मलद करूष देश में पहुँचे। जहाँ श्रीराम ने ताड़का का वध किया। फिर उन्होंने सोन-भद्र को पार किया और तब गंगा को पार किया, उसके बाद तब मिथिला की ओर प्रस्थान किया तथा मार्ग में अहिल्या का उद्धार किया। कवि रुद्र प्रताप ने सरयू गंगा को पार करने के पश्चात् राम लक्ष्मण और विश्वामित्र को करूष मलद देश में पहुँचाया है। कवि ने यहाँ वाल्मीकि रामायण का ही अनुसरण किया है। यह पुराण की अन्तर्कथा है। जब देवराज इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया तब उन्हें ब्रह्महत्या का पाप लगा। पाप से आकुल एवम् क्षुधा से पीड़ित होकर इन्द्र यहाँ निवास करने लगे। देवताओं की प्रार्थना पर ऋषियों ने उनको गंगा जल से स्नान कराकर पाप की मलिनता और कारुष-क्षुधा से मुक्त कराया। और इस प्रकार इन्द्र अपनी पूर्व प्रकृति में आकर देवलोक को चले गये। देवराज इन्द्र ने जाते समय उस देश का, जहाँ निवास किया था, समृद्धशाली होने का वरदान दिया था। तब से यह देश मलद और करूष कहे जाते हैं। वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख करते हुए कहा गया है -

निश्चित रूप से करुष देश पूर्व में शोणभद्र से लेकर माण्डा राजधानी अर्थात् तमसा नदी के तट तक तो है ही। तमसा नदी भी गंगा नदी से संगम करती है तथा सोनभद्र भी गंगा से संगम करती है। दोनों के बीच की यह भूमि विन्ध्य पर्वत और जंगलों से उस युग में भरी पूरी रही होगी। खेती करने वाले तथा गोचारण करने वाले बहुत ही कम यहाँ रहे होंगे। इतिहास के युग में कर्णाद्रि [चुनार] और कान्तिपुरी [कंतित] राजधानियों के बसने के बाद यह जनपद समृद्धि से जगमगाने लगा होगा। माण्डा तो बहुत बाद में आबाद हुआ। कभी माण्डव्य ऋषि के निवास करने के कारण इसे माण्डा कहा जाता है। जो जनपद कभी इन्द्र के निवास करने से मलद और करुष कहा गया उस देश का राजा बनने में कवि ने बड़े गर्व का अनुभव किया है। वह लिखता है -

> विंध्य प्रान्त विमल युग अधुनाई । गोदा भद्रा सरित सोहाई ।।
> काशिराज नगरी अनु काशी । शिव मय वहाँ सकल पुरवासी ।।
> नयमक परंपरा महिपाला । कारुष जनपद देश विशाला ।।
> अति सम्पन्न प्रजा जेहि केरे । त्रिजगति नर आनन कर हेरे ।।
> श्री भगवत अरिमर्दन राजा । पालहिं हरि सम प्रजा समाजा ।।
> * * * *
> कौशलीय जग जनक हमारे । जनु द्वितीय विधु के अवतारे ।।
> पुरजनन न कह मोहिं संतत धर्म- विहीन ।
> रिषि माडव्य नगर बसहिं कह राम-रस पीन ।।[24]

इस प्रसंग में और सारी बातें वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही हैं। कवि ने वाल्मीकि रामायण का अनुसरण करते हुए ताड़का को यक्षिणी बताया है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार ऋषि अगस्त्य के शाप से वह राक्षसी बनी ।

24- कु० रामायण, अवधपद, दो०- 47।

परशुराम प्रसंग :-

जैसा कि वाल्मीकि रामायण में उल्लेख है, उसी प्रकार कवि रुद्रप्रताप ने भी अपने "रामखण्ड" में लिखा है कि जब राम विवाह के उपरान्त लौट रहे थे तो मार्ग में परशुराम से उनकी भेंट हुई। लेकिन इन्होंने वाल्मीकि की अपेक्षा परशुराम प्रसंग का कुछ विस्तार किया है।

इसी प्रसंग की बात को राम-कथा वालों ने मिथिला नगर में ही घटित किया है और अनुप्राणित किया है। इससे ऐसा कुछ आभास होता है कि परशुराम प्रसंग की कल्पना मूल रूप से वाल्मीकि रामायण में नहीं थी। इसे बाद में सम्मिलित किया गया और इसे सम्मिलित करने के पीछे यह उद्देश्य था कि राम का विष्णु अवतार हो जाने के पश्चात् परशुराम का विष्णु अवतार समाप्त हो गया और उनका तेज राम में समा गया। इस कल्पना प्रबन्ध के प्रचार-प्रसार के लिए बहुत सारी कल्पनाएँ करनी पड़ी हैं कि शिव का धनुष जनक के यहाँ रखा हुआ था और राम के विवाह के पश्चात् जब दशरथ की बारात लौट रही थी तो वहाँ पर परशुराम का आगमन हो गया, सम्भवतः धनुष के टूटने की खबर परशुराम को लग गई। आदि आदि बातें। यदि परशुराम को भगवान शिव का धनुष इतना ही प्रिय था तो उसे राजा जनक के यहाँ रख छोड़ना और निश्चिंत रहना उचित नहीं था। वह धनुष उनके पास ही रहना चाहिए था और शिव के धनुष को तोड़ने की शर्त सीता के विवाह के लिए रखना जनक के लिए उचित नहीं था। किन्तु पुराण की कथा की कल्पना करने वाला कथाकार अपनी कथा को जोड़ने के लिए इतना उतावला है कि वह इन विसंगतियों की ओर ध्यान नहीं देता। उसे इस बात की उतावली है कि किसी प्रकार परशुराम और राम का आमना सामना हो जाय और विष्णु अवतार का जो तेज परशुराम में विद्यमान है वह राम में स्थानान्तरित हो जाय। क्योंकि एक ही समय विष्णु के दो अवतार पृथ्वी पर कैसे रहेंगे, और परशुराम अजर-अमर हैं, उन्हें राम के पश्चात् भी पृथ्वी पर रहना है। लेकिन राम के जन्म के बाद विष्णु के अवतार के रूप में राम होंगे, परशुराम नहीं होंगे। केवल मत

की इस स्थापना ने यह दूर की कल्पना की और परशुराम की प्रबन्ध कल्पना को वाल्मीकि रामायण में प्रविष्ट किया। यह कथा- प्रसंग तीसरी सदी ईसवी में जरूर हो गया होगा ।

बाद के कथा- कारों ने अपने अपने रोचक ढंग से बढ़ा चढ़ा कर और कुछ ने तो परशुराम को बहुत लांछित करते हुए इस कल्पना का विस्तार किया है। भवभूति ने अपने "उत्तररामचरित" में परशुराम को लांछित और निन्दित करने के लिए इस कल्पना का विस्तार महावीरचरित में तीन अंकों तक किया है।[29]

आगे चलकर इस कल्पना का विस्तार होते होते जहाँ गोस्वामी तुलसी- दास ने रामचरितमानस में बड़े ही मर्यादित एवम् शिष्ट ढंग से वर्णन किया है वहीं महाकवि केशवदास के रामचन्द्रिका प्रबन्ध में इस कल्पित प्रबन्ध के परशु- राम- लक्ष्मण संवाद ने एक रोचक रूप ले लिया है।

वाल्मीकि रामायण में ऐसा नहीं है। अध्यात्म के राम कथा में भी ऐसा नहीं है फिर भी अपेक्षाकृत इसमें विस्तार है। इन प्रसंगों में राम द्वारा यह कहा जाना कि धनुष बहुत पुराना था और परशुराम का भी इस बात का दोहराना कि पुराने धनुष को तोड़ने से तुम्हारा गर्व बढ़ गया है- इस कल्पित प्रबन्ध के ऐसे स्थल हैं जिन्हें लोक वार्ता या लोक कथा में ही कहा जा सकता है -

जनक प्रतिज्ञा हित इत आयउँ ।
तबहिं हर कोदंड चढ़ायउँ ।।
दुर्बल भया हर धनु समुदाई ।
पुनि प्राचीन छिद्र पुनि राई ।।
* * * *

29- भवभूतिकृत उत्तररामचरित

रच्छु प्रभु अब लगि उर मोरे ।
सत्य दास प्रभु प्रिय अति मोरे ।।
जा कहँ स्वन्द बनिता जैसे ।
ताहि न भाग्यवान कुछ तैसे ।।
देख्यो नाथ देवक संसारा ।
मन्द मोह तेहि अपर बिकारा ।।
रचत कुटिल बहु भाय अवस्था ।
जानहिं तेहि सब मन्द अवस्था ।।
तुम्ह करि हरि अब नाथ सुजाना ।
नाथ नाथ भागहिं तेहि दुखा[32] ।।

और इस प्रकार अंत में परशुराम का धनुष भगवान राम को देते हैं। इस प्रसंग की चौपाइयाँ हैं -

बहि करि विनय अनेक विधाना ।
कर गहि दीन्हें भृगु भगवाना ।।
* * * *
तब ते प्रभु पद भृगुकुल माँथा ।
सोहत सोहत नर कुल नाथा ।।
अब करि तुम पायउ यह न्याया ।
भूल न्याय जीवित मैं पाया ।।
दीजै अब यह वर रघुराया ।
मोह न छोड़ै राउरि माया[33] ।।

परशुराम के विनय और भक्ति का यह विस्तार कवि ने वैष्णव-परम्परा के अनुसार किया है ।

32- कृ रामकाव्य, बालकाण्ड, दो० - 1049, 1050.
33- तद्वत्

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

कोसला पद के नूतन कथा प्रसंग

इस पद में नूतन कथा- प्रसंगों की उद्भावना कवि ने अपेक्षाकृत कम की है। जो नए कथा- प्रसंग हैं, वे इस प्रकार हैं -

1- राम के पास देवर्षि नारद का आगमन ।

2- राम और सीता का गुरु वशिष्ठ के आश्रम में जाकर आचार की शिक्षा ग्रहण करना ।

3- वन-गमन से पूर्व गुरु वशिष्ठ के घर से भगवान राम का अश्व मँगाना ।

4- राम के वन गमन के बाद कौशल्या और सुमित्रा का विलाप। रामावतार की नई कथा ।

5- भरद्वाज आश्रम से प्रस्थान के अनन्तर यमुना वर्णन ।

6- चित्रकूट में मन्दाकिनी वर्णन ।

7- वट- वृक्ष अवलम्ब की सुन्दरता ।

8- राम को वापस ले चलने का भरत का विशेष आग्रह ।

9- भगवान राम के राज्याभिषेक के प्रति भरत का विशेष आग्रह देखकर ब्रह्मा द्वारा वाणी को भेजना ।

10- कवि का अपने को दैविक रावत देवदास का वंशज निरूपण करना ।

1- भगवान राम के पास देवर्षि नारद का आगमन :-

यह कथा कोसला पद [अयोध्या काण्ड] के पहले ही विभाग में आती है। वाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। राम के राज्याभिषेक की तैयारी देखकर ब्रह्मा चिन्तित हो जाते हैं कि दानवों का संहार अब कैसे होगा, राक्षस कैसे मारे जायेंगे और अपने मानस- पुत्र नारद को भगवान राम के पास इसलिए भेजते हैं कि वे देवों के कार्य का स्मरण करें जिसके लिए उन्होंने अवतार लिया है। यथा -

देहु राम कहँ पद जुवराजू ।
हौं मन चैन होउ अब आजू ॥
करत विचार भूप अधिकाई ।
समाचार कमलोद्भव पाई ॥
असमय सब विचार करि लीन्हें।
नारद प्रभु सन पठवत होई[1] ॥

इसके बाद जहाँ भगवान राम राजभवन के आँगन में बैठे हैं, नारद वहाँ आकाश- पथ से उतरे -

अन्तरिक्ष से प्रगटेउ कैसे ।
तिमिर फूट रवि कढ़हिं जैसे ॥
शुद्ध स्फटिक चन्द्र सम देहा ।
गावत हरि जस अमी सनेहा ॥
* * * *
आयउ सहज अवनिपति रामा ।
कीन्हेउ मुनि कहँ दण्ड प्रनामा ॥[2]

नारद ने राम की स्तुति की और उनकी महिमा का गुणगान किया और कहा कि सारा संसार राम और सीता मय है। कवि ने लिखा है -

अमर सकल सुर असुरी सीता ।
नर नारी सिय पतिकुल सीता ॥

भक्ति और संसारी दृष्टि का समन्वय नारद ने किया। इसके बाद जिस ब्रह्मा ने जिस उद्देश्य से भेजा था, अपनी विनय राम से कहनी आरम्भ की -

---

1- कु० रामायण, चौथा पद, विश्राम- 1।
2- वही

यह सुनकर देवर्षि नारद अत्यन्त प्रसन्न हुए और हर्षित होकर ब्रह्मपुर को चले गये। यहाँ एक बात यह भी उल्लेखनीय है कि भगवान राम के अवतार के उद्देश्य को नारद जी के द्वारा याद दिलाकर कवि रूपप्रताप ने श्रीमद्-भागवत एवं अन्य पुराणों की परम्परा का ही पालन किया है। प्राय: भगवान विष्णु के अवतारी लीलाओं में नारद की अहम् भूमिका रहती है।

अयोध्या पद के प्रथम विश्राम में ही इस उपोद्घात को लेकर कवि ने राम के इस चरित्र , वन गमनादि प्रसंगों को उनकी नर लीला अर्थात् मानवीय नाटक का रूप दे दिया है। पाठक विष्णु अवतार के रूप में इस कथा को पढ़ता है और भक्ति भावना से विभोर होकर वह मानवीय संवेदनाओं से वंचित हो जाता है। राम के वनगमन का प्रसंग, पुरवासियों से बिछोह, सीता का वन जाना, कौशल्या से राम की वार्ता, दशरथ की मृत्यु आदि प्रसंग भी भगवान की मानवीय लीला के रूप में सामने आते हैं। वे हृदय की संवेदना से अभिभूत नहीं करते, बल्कि भक्ति की चेतना से आप्लावित करते हैं। उसमें भी कवि ने यह भी कहा है कि यह कथा भगवान शिव पार्वती से कह रहे हैं। अर्थात् भगवान राम की इस मानवीय लीला का एक और पुष्ट प्रमाण भक्ति भाव से विभोर पाठक के हृदय में दृढ़ हो जाता है। कवि लिखता है -

अस कहि हर पुनि रहेउ लुकाई ।
बोली उमहि अचलवर जाई ॥
मंगल भवन अमंगल हारी ।
अवध कथा भाखेउ त्रिपुरारी ॥
सुनु बरानने चरित सोई ।
जेहि कर अमर लोक सम होई ॥

इस प्रकार अयोध्या पद [अयोध्या काण्ड] का आरम्भ देवताओं की अव-तार- मान्यता के प्रकाश में चित्रित हुआ होता है। यह रचना प्रबन्ध वाल्मीकि से बिल्कुल विपरीत है।

अवतार लेंगे और राजा होंगे उनका दर्शन कर तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा। उसी आशा से मैं पुरोहित बना। कृपा कर मेरा उद्धार कीजिए जिससे जग मोहिनी माया मुझे ठग न सके ।

लौकिक रीति जानि अब कीजै ।
गुरु दक्षिणा कृपा करि दीजै ।।
तुव आश्रम जग मोहिनि माया ।
मोहि न ठगै कीजै यह दाया[5] ।।

यहाँ पर कवि यह भूल हो जाता है कि वशिष्ठ राम को संयम-नियम की शिक्षा देने आये हैं और स्वयं भिक्षा माँगने लगते हैं। यहाँ पर जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास ने "रामचरितमानस" में वशिष्ठ को भरत के सामने निरभिमान प्रस्तुत कर दिया है -

भरत महा महिमा जलरासी ।
मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी ।।
गा चह पार जतन हिय हेरा ।
पावति नाव न बोहित बेरा[6] ।।

यहाँ कवि यह भूल हो जाता है कि महर्षि वशिष्ठ वेद के द्रष्टा ऋषि हैं। उनकी कृपा, आदेश निर्देश से साम्राज्य बनते बिगड़ते हैं। राजकुमार से वेद के द्रष्टा ऋषि की ऐसी दीन वाणी उचित नहीं प्रतीत होती। लेकिन वैष्णव भक्ति धारा में कवियों ने इस गौरव का ध्यान नहीं रखा है।

नियम और शिक्षा के स्थान पर कवि मौन हो गया है। ऐसे लगता है कि कवि रघुनाथ ने यह पढ़ा ही नहीं है कि राजाओं को क्या शिक्षा दी जानी चाहिए। महर्षि वशिष्ठ ने क्या शिक्षा दी उसे वे केवल एक दो अर्धाली में कह गये -

---

5- कु० रामचन्द्र, षोडशपद, दोहा - 32.
6- रामचरितमानस, अयोध्या काण्ड, दोहा-257

जब सीता राम के साथ वन जा रही हैं उस समय राजभवन की स्त्रियाँ कौसल्यादिक रानी सीता को नारी धर्म की शिक्षा दे रही हैं। यह बात वाल्मीकि रामायण में नहीं है। उस विषम परिस्थिति में सीता को नारी धर्म की शिक्षा दिलाया जाना अस्वाभाविक लगता है। क्योंकि सीता अपने आप राम के साथ जाने को तैयार हुई थीं, जबकि सब लोग उन्हें मना कर रहे थे। नारियाँ जिस पातिव्रत धर्म की उन्हें शिक्षा देने जा रही हैं उसके लिए वे पहले ही से सक्षम रूप से अपनी मानसिक स्थिति बना चुकी हैं। यहाँ पर कवि ने भी लिखा है -

करत बिलाप कलाप अपारा ।
रोवहिं त्रिय सब मनि पद धारा।
नारि धर्म सब सियहिं सिखावहिं।
जथा वेद संमति ते गावहिं ।।
नारिहिं पति सम देव न दूजा ।
वेद पुरान विदित तेहि पूजा ।।
बहु विषाद आपदा भारी ।
पति संग सब दुख सो वर नारी ।।
यहि प्रकार बहु सिखव दयेऊ ।।
पुरतियन्ह करहिं सब रोऊ ।।

यहाँ पर "पति संग सब दुख सो वर नारी" यह कहने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि सीता तो यह दुःख सहने जा रही हैं। कवि का यह कथन अनानु-गतिक है।

<u>राम कवच कथन :-</u>

इस प्रसंग में कवि ने एक विशेष उद्भावना की है। वह है विश्राम 3 में "राम-कवच" कथन। भगवान राम ने सीता को वन जाने से बहुत मना किया, किन्तु उनकी

इसके आगे कवि ने जन्म्यास और हृदयन्यास विधियों का वर्णन कर "न्यास-तन्त्र" के प्रयोग को भलीभाँति समझाया है। इस ग्रन्थ के रचयिता का भक्ति साहित्य के तन्त्र प्रकरण में बड़ा योगदान है।

राम वनगमन के पश्चात् कौशल्यादि का विलाप :-

कवि रघुनाथ ने राम का गमन के समय कौशल्या और सुमित्रा के वार्ता-लाप के साथ कौशल्या के विलाप का चित्रण किया है। जिसमें कौशल्या विलाप करती है और विलाप में वह अनेक तरह से मन में राम, सीता और लक्ष्मण की चिन्ता करती है। सामान्य नारी की तरह वे कहती हैं कि "कोई दुःख नहीं था, राम बिना राज्य के भी रहते लेकिन अयोध्या में तो रहते और तब राजा शोक से न मरते लेकिन किरातिनि कैकेयी ने उन्हें वन भेज दिया -

पितु बिरचें जो घरि रहते ।
तो भरिहि छिन लोकायत रहते ।।
आनन्द अवध राज्य आई ।
तबहि किरातिनि बनहि पठाई ।।

इस प्रसंग की विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि सुमित्रा कौशल्या को समझाती है और उनको यह भी कहती है कि राम का अवतार दुष्टों के नाश के लिए हुआ है। उन्होंने अपने सच्चे वचनों से कौशल्या को धैर्य बँधाया है। उन्होंने कहा है कि यज्ञ की समाप्ति पर मुनिवर ने यह कहा था कि रावण तुम्हारा पुत्र सभी पापियों का नाश करने वाला होगा -

कह उच्चरित मुनीश सीतापति लछमनकान ।
होहिं तनय जगदीश सकल पापिजन नाशकिन।।
कहिय न लागि कबल जीवा मधुर विवेक ।
जा कई वन रव देख भानु भानु भगवान भजु ।।[10]

10- कु0 रामचन्द्र, ओरछा पद, सोरठा- 85,86.

यमुना वर्णन -

विश्राम 16 में राम यमुना नदी को पार करते हैं। यमुना नदी का वर्णन करते हुए कवि ने यमुना नदी का भौगोलिक एवम् पौराणिक परिचय दिया है। यमुना नदी मथुरा वृन्दावन से बहती हुई गोवर्धन का वैभव समेटे हुए प्रयाग की ओर जाती है। उसका जल नीला है, ऐसे आख्यान यमुना नदी को पार करने के लिए मुनि- कुमारों ने लकड़ी का बेड़ा ले आकर उपस्थित किया जिस पर राम- लक्ष्मण और सीता बैठ गये और उन लोगों ने उसे खेकर पार कर दिया। इस प्रसंग के कुछ पद हैं -

विपदा टारि विमल मधु आये ।
यह कालि- कन्या दरसाये ॥
रवि अवतार - आत्मजा निहारा।
निरखहिं बहु बरन पति माथा ॥

* * *

ब्रिन्दावन बैठि तीर किनारे ।
यमुना केलि लोक आकारे ॥
सुरभी लोक सरित है सोई ।
कलोलहर नव जीवन बोई ॥

* * *

लाख लाख रघुपति रज पाई ।
बेरा मुनि सुत सुभग बनाई ॥

* * *

मुनि बालवृन्द सौ बैठि दी नाव लीन्हेउ सरित पार ।
सीतल कालिन्दीहिं लखहि निरखत विविध प्रकार[12] ॥

12- कृ० रामायण, अयोध्याकाण्ड, दोहा - 132.

चित्रकूट के तपस्वी -

कौशला पथ के अठारहवें विश्राम में कवि ने कुछ विचित्र प्रकार के तपस्वियों एवम् तप- साधकों का वर्णन किया है। कवि ने ग्रन्थों में पढ़कर चित्रकूट पर्वत पर इसकी कल्पना की है। कवि के अनुसार कोई सूर्य की ओर आँखें करके तप कर रहे हैं, कोई कुशासन करके तप कर रहे हैं, कोई ऊपर हाथ उठाए,कोई एक पैर खड़े हैं, कोई मौन व्रत धारे हैं, कोई पानी पीकर, कोई हवा पीकर रहते हैं। कोई पंचाग्नि तापते हैं, कोई वर्षा की जलधारा में खड़े रहकर तप करते हैं -

रवि सन्मुख कोउ दृग दिये धूम पान करतार ।
उरध पान कोउ निरुत्तर कालन अधिकार[13] ।।

कोई अष्ट याम पूजा करने वाले हैं, कोई फलाहार करते हैं, कोई प्राणायाम साधते हैं, कोई वेद पाठी हैं। कोई जाड़ा सहन करते हैं, कोई जल में प्रवेश करके तप करते हैं। कोई भक्त हैं, इष्टदेव का पूजन, ध्यान वन्दन अर्चना करते हैं तो कोई कर्म के सिद्धान्त को मानने वाले यज्ञ यागादिक में लीन हैं तो कोई आध्यात्मिक साधना कर रहे हैं। आदि आदि -

भक्ती करमी कोउ तप ज्ञानी ।
चित्रकूट वासी मुनि ध्यानी ।।

ऐसे मुनियों के सुवेश इस पर्वत पर पर्वत और नदी के बीच दोनों के परिपालक कृपालु राम ने अपनी पर्णशाला की रचना की और वहाँ निवास किया।

वन और मंदाकिनी का वर्णन :-

भगवान राम के चित्रकूट पहुँच जाने पर वहाँ पर कवि ने पहले वन की शोभा का वर्णन किया है। ये दोनों ही वर्णन कवि की अपनी कल्पना है। मानस में चित्रकूट में मन्दाकिनी का वर्णन नहीं है। सीता कहती हैं -

13- कृ० रामचन्द्र, कौशलापथ, दोहा- 221।

जयन्त की कथा -

वाल्मीकि रामायण में सीता के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर इन्द्र पुत्र जयन्त की धृष्टता का वर्णन नहीं है। यह वर्णन अन्य राम- कथाओं से आया है और निश्चित रूप से यह दक्षिण भारत की उपज है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो इसका वर्णन अरण्य काण्ड में किया है लेकिन कवि रघुनाथ इसका वर्णन अयोध्या काण्ड में ही करते हैं। ओरछा पद के विश्राम 35 में कवि वर्णन करता है कि चित्रकूट की सुन्दर वन में जहाँ वृक्ष पुष्प-भार से नीचे झुके हुए हैं, भौंरे गुंजार कर रहे हैं वहाँ पर राम सीता के साथ सुखपूर्वक निवास कर रहे हैं। नारी-सुलभ सीता तथा पुरुष- सुलभ राम के भावों का वर्णन कवि ने किया है। कवि लिखता है -

केसर कुसुम स्यामाभि सिय अंग भूषित करत हरि ।
तजि सौंच सिखा भवानि गवड सोच सब अपर विधि[14]॥

मृग मुदित मन हरि पति देखी ।
गरभ भई त्रिय सुता विसेखी ॥
चकित चंचला हरिख बताई ।
मन मन हरि लघु मद लजाई ॥

एक दिन राम की आज्ञा से सीता ने हरिण का मांस बनाया उसमें पितरों देवों की बलि दी। किन्तु इन्द्र का भाग नहीं लगाया। जब उन्होंने भोजन के बाद शेष मांस को कौवों को डाला तो इन्द्र पुत्र जयन्त ने कौवे का रूप बनाकर मांस को आकुल कर लिया। इस पर सीता ने उसको दूर करना चाहा। क्रुद्ध होकर उसने सीता के मुखारविन्द पर नख से चोट पहुँचाई। भगवान राम यह देखकर उठ खड़े हुए तब तक यह देखकर वह सीता की ओर फिर दौड़ा तब राम ने कुश के सींक बाण को आकृष्ट कर उसके ऊपर प्रहार किया। इन्द्र- पुत्र भय से व्याकुल होकर भागा और बाण ने उसका पीछा किया। अग्नि के समान बाण

14- कृ० रामायण, ओरछापद, विश्राम - 35।

उसका पीछा किये चला जा रहा था और जब बाण की ज्वाला से व्यथित राम लोक, विष्णु लोक, ब्रह्म लोक तथा शिव के पास तक गया किन्तु उसे कहीं शरण नहीं मिली। तब वह महाराज जनक के यहाँ गया परन्तु वह भी राम के विरोध में उसकी रक्षा नहीं कर सके। अन्त में वह उन्हीं अशरण-शरण, अकारण- करुण करुणा- करुणालय भगवान राम के पास शरण में आया -

विकल बहुरि बहुरा सु जयन्तु ।
ताकेसि बचन बचन भगवन्तु ।।

और उसने अपने प्राण- दान की याचना की। इस पर करुणानिधान राम ने कहा- यह बाण तुम्हारा वध करने के लिए था परन्तु अब तुम शरण में आ गए, अब तुम्हारी रक्षा करनी है। अतः तुम्हें अपना एक अंग इस बाण को सौंपना होगा तभी तुम्हारी रक्षा हो पायेगी। तब उस इन्द्र- पुत्र ने अपना एक नैन उस बाण को देकर अपनी रक्षा की -

हरि बाणी सुनि करेसि विचार ।
एक नैन दियो इन्द्र - कुमार ।।

एक नैन खोय जियत भो सुत प्रताप रघुनन्द ।
अब सुनि तन मन धारि हृदय गो निजु लोक जयन्द ।।[15]

भरत की दीनता, राम से अयोध्या लौटने का आग्रह एवम् प्रस्ताव :-

इस प्रसंग को कवि ने वाल्मीकि- रामायण से हटकर गोस्वामी तुलसी- दास के अनुसरण पर बढ़ा चढ़ा कर लिखा है। लेकिन गोस्वामी तुलसीदास की पद्धति का अनुसरण करके भी कवि की उक्तियाँ नवीन हैं और उसका यह प्रसंग उक्ति की दृष्टि से मौलिक है।

15- कु० रामकृष्ण, अयोध्या पद, दोहा- 496.

यहाँ हमें यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि वाल्मीकि और कालिदास जैसे कवि भारत के स्वर्ण- युग के कवि थे। जब देश का वैभव और उसकी भुजाओं का विक्रम शत्रु को कम्पित करता था। ये दोनों कवि, राजा क्या होता है, राज्य का धर्म क्या है तथा राजनीति की कठिनाइयाँ क्या हैं ? यह सब कुछ जानते थे। अतः वाल्मीकि और कालिदास ने इस प्रसंग को अधिक विस्तार नहीं दिया है, विस्तार देने का अवसर भी नहीं था। आवश्यकता इस बात की थी कि राम को लौटाने का आग्रह भी किया जाय तथा उनके जो आदेश हों उस करणीय कर्तव्य को भी किया जाय। अतएव इन दोनों कवियों ने इस प्रसंग को विस्तार नहीं दिया और जब राम ने लौटना स्वीकार नहीं किया तो भरत को चौदह वर्षों तक राज्य की रक्षा करनी ही थी। भरत की भक्ति और उनकी कर्तव्य- परायणता की कसौटी थी कि वे राम की ओर से राज्य की रक्षा करें। राजनीति के वेत्ता उन राजकुमारों की यह परस्पर की बातचीत थी। जब पिता मर गये हों, उस समय औचित्य पंचायत और भक्ति प्रदर्शित करने का अवसर नहीं था, राजनीति यही कहती है। लेकिन गो० तुलसीदास उस राजनीति की उपेक्षा करके भरत की भक्ति को एक ऐसी काल्पनिक मूर्ति बनायी जिसमें भक्ति के आवेश में ऐसी बहुत सी बातें कही हैं जो उस परिस्थिति के अनुकूल नहीं प्रतीत होती हैं। कवि रघुनाथ ने भी ऐसा ही किया है किन्तु उक्तियाँ उनकी नवीन हैं।

प्राङ्गणों मध्य ऋषि मुनियों के बीच सभा जम रही है। भरत अपनी विनय कर रहे हैं। कह रहे हैं कि माता ने भरत का अभिषेक क्या माँगा अवध में नई नाव बूड़ी हो गई। कनेर में केवाँच नहीं होते, बबूल का पेड़ लगाकर आम का फल नहीं खाया जाता, बुढ़ापा पाकर यौवन पाने की अभिलाषा व्यर्थ है, गड्ढे के जल में मोती नहीं होता, कौवे का बेटा हंस नहीं होता, बैल हाथी

भरत की निष्ठा से देवताओं को भय :-

भरत की निष्कपटता एवम् अभिन्न निष्ठा देखकर देवताओं को भय हुआ और वे दुखी होने लगे। उन्हें यह आशंका हुई कि भरत का प्रेम देखकर ऐसा न हो कि राम अयोध्या लौट जायँ और रावण का संहार शेष रह जाय। देवताओं की यह चिन्ता अन्तर्यामी भगवान राम ने जान लिया और तब उन्होंने अपने मन को दृढ़ किया। भरत के प्रेम पर संयम किया और संकेत कर गुरु वशिष्ठ से आग्रह किया कि वे भरत को एकान्त में ले जाकर यह समझावें कि मैं कौन हूं और मेरा अवतार क्यों हुआ है -

संध्या नेम कीन्ह रघुराई ।
मोरि कथा प्रिय सुनहिं सुनाई ॥
जानि राम रुख गुरु बिलगाय ।
भरतहिं तब एकान्त लै जाय ॥

वशिष्ठ ने भरत से सारा आख्यान कहा। अदिति और कश्यप की तपस्या की बात बताई। यह भी बताया कि रावण का विनाश करने के लिए और देवों की रक्षा के लिए ब्रह्मा की विनय सुनकर भगवान विष्णु ने नर रूप धारण किया। महर्षि वशिष्ठ ने यह भी बताया कि जब राम के राज्याभिषेक की बात चल रही थी तभी ब्रह्मा को चिन्ता हुई थी और उन्होंने वाणी को भेजकर तुम्हारी माता की मति को भ्रष्ट किया था। उनका कोई दोष नहीं है। आदि आदि। उसके बाद उन्होंने पूरी सृष्टि का वर्णन किया है जो सृष्टि भगवान विष्णु अर्थात् भगवान राम का रूप है। यह सुनकर भरत का हृदय शान्त हुआ और उन्होंने राम को लौटाने के प्रति अपनी आग्रह को शिथिल किया ।

सीता को लौटाने का आग्रह :-

भरत की निष्ठा ने दूसरा रूप लिया। उन्होंने कहा कि बेशक भैया राम तो वन जाँय पर मेरी यह आग्रह है कि नारी को पुरुष का आधा शरीर कहा

जाता है अतः सीता अयोध्या लौट चलें। उन्हीं को राज- राजेश्वरी मानकर शासन का संचालन करूँगा -

मुनि कर जोरि भरत भय ठाढ़े ।
हर्ष रोम द्रिग वारि सों बाढ़े ।।
किमि न करउं गुरु नाथ रजाई ।
जउ आयुसि भूपति करि पाई ।।
पितर सिया सों सब अवस्था ।
मोदित होहिं राम सब अवधा ।।
नारि अर्ध तनु वेद बखानी ।
राउ रहित भूपति बहु रानी ।।

गुरु वशिष्ठ ने उन्हें फिर समझाया कि राम को वन में छोड़कर सीता को अयोध्या में रखना उचित नहीं है और सर्वथा लोक मर्यादा के विरुद्ध है अतः यह मत करिए-

कह वशिष्ठ भरत सुनहु मन करहु बहु सीय ।
राम विपिन सिय अव रखब यह नहिं जग कमनीय[19] ।।

फिर राम ने भरत की आग्रह पर अपनी पादुका भरत को दी। जिनको ही प्राप्त कर उन्होंने संतोष किया और उसे सिंहासन पर बैठा राज्य संचालन का निश्चय किया। पादुका को उठाकर जब भरत ने अपने सिर की जटाओं के ऊपर रखा तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे गंगा भगवान शिव की जटाओं पर विराजमान हों। फिर कवि ने दूसरी उत्प्रेक्षा की कि भरत ने दोनों पादुकाओं में से एक को राम और एक को सीता का प्रतीक समझा -

---

19- पू० रामायण, अयोध्या पद, दोहा- 848.

सुनायगा और समस्त क्लेश त्यागकर सम्पूर्ण सम्पदाएं प्राप्त होंगी। जिस देश में यह कथा होगी वहाँ ईति भीति नहीं होगी। स्त्रियाँ वन्ध्या नहीं होंगी। कन्याएँ श्रेष्ठ पति प्राप्त करेंगी। वहाँ कोई विग्रह नहीं होगा, कोई आपत्ति नहीं आयेगी। ऐसी है यह मुक्ति एवं भक्ति प्रदायिनी [illegible] की कथा। [दोहा- 633]

इसके आगे कवि अपने वंश का वर्णन करता है। कहता है कि देववास के कुल में राजा ऐश्वर्य सिंह हुए। [कि दास पुराण के अनुसार काशी नरेश हैं, किन्तु कवि का यह कथन प्रामाणिक नहीं है कि ऐश्वर्यसिंह उनके कुल में हुए]। ऐश्वर्य सिंह का विवाह बाघेलेन्द्र रीवा- नरेश की राजकुमारी से हुआ, वही हमारे माता- पिता हैं। मैं उनका पुत्र हूँ। आगे कवि कहता है कि हमारी राजधानी [काशी नगरी है] मधुपुर [मथुरा] के समान आनन्द देने वाली है। आगे कवि ने उसकी प्राकृतिक स्थिति का सुन्दर वर्णन किया है -

राजधानि काशिका पुर रानी ।
मधुपुर सरिस सुआनन्द-दानी ॥
मण्डित पुर प्रख्यात बखाना ।
कह बरनन बहु विविध पुराना ॥
[illegible] सरिता के तीरा ।
देवन्ह दुर्लभ जाकर नीरा ॥
त्रिलोकोत्तर विदित नगर सोहावन।
दरसत तापत्रय छिन पावन ॥
उत्तर दिसा देखि जह्नु किशोरी ।
मरी अमर करता जग जोरी ॥
विन्ध्य रूपी कोष्ठ देहि नीरा ।
तातें भव कौ लीवै गम्भीरा ॥

गंगा जी से संगम करती है जो आज भी कर्मनाशा कहा जाता है।[23] चन्देलों द्वारा शिव मन्दिर निर्माण किये जाने के कारण ही कवि ने उसके जल को देव-पुनीत नीर कहा है।

कवि ने आगे विन्ध्य पर्वत की महिमा का वर्णन किया है। वह कहता है कि विन्ध्य पर्वत अनेक देव- देवियों से सेवित है। कवि ने विन्ध्य कूट पर नन्द किशोरी गोविन्द्र कुमारी जो अष्टभुजी कही जाती है, की महिमा का मनोहर वर्णन किया है। यह वही देव-पुत्री है जिन्होंने शुंभ- निशुंभ का वध किया था।[24]

इसके बाद कवि ने अपनी विनय और गुरु के समक्ष अपनी दीनता का वर्णन किया है। उसने कहा है कि विन्ध्याचल के उत्तर और गंगा के निकट माण्डव्य नगर [माण्डा] में मैंने इस कोकशास्त्र की रचना की है -

> दक्षिण सुरसरि तीर विन्ध्य अद्रि के अग्र दिसि ।
> माण्डव्य नगर रच्यो कुकोमत ग्रंथ यह ।।[25] - सो०- 246.

इस प्रकार कोकशास्त्र के अन्त में पुराने महाकवियों या कथाकारों में जो कथा कहने की पद्धति मिलती है उसके अनुसार ही कवि ने अपने समय के हिन्दुस्तान में छाये हुए कुछ [गोरे अंग्रेज] के शासन की महिमा का आख्यान किया है।और इलाहाबाद के कलेक्टर "राय" को "किंग" कहा है और उसके शासन को भगवान "मनु" के समान व्यवस्थित बताया है -

> हिन्द बसत यहि काल, कुछ गुरु प्रख्यात नृप ।[26]
> किंग राय महिपाल , पालत मेदिनि मनु सरिस।। - सो०-247.

23- विशेष जानकारी के लिए देखिए - "आठवाँ अध्याय" - डॉ० जयशंकर त्रिपाठी का लेखनुमा लेख की ऐतिहासिक तिथि ।"

24- श्री दुर्गा सप्तशती- अध्याय- 11.

25- कुंवर रामजन्द, कोकसार पद्य, सोरठा - 246.

26- वही, सोरठा- 247.

पंचम अध्याय

पंचम अध्याय

अटवी पथ

अटवी पथ के मूल कथा संदर्भ :-

अटवी पथ के मूल कथा- प्रसंग इस प्रकार हैं -

1- परिचय

2- विराध का संदर्भ

3- गोदावरी नदी के तट पर राम का निवास ।

4- भक्ति और वैराग्य के समन्वित निरूपण ।

5- सीताहरण / शूर्पणखा प्रसंग ।

6- स्वर्णमृग का विहार ।

7- सीता- हरण ।

8- सीता- विलाप ।

9- जटायु ।

10- लंका में सीता का निवास ।

11- कवि का निज- लंका- वर्णन ।

अटवी पथ अर्थात् अरण्य काण्ड राम कथा का मध्य बिन्दु है। जहाँ पर अयोध्या से चलती हुई कथा विराम ले लेती है और कथा- धारा का दूसरा छोर लंका की ओर बढ़ लेता है। अतः सीता का हरण राम कथा का मध्य बिन्दु है और यह सीता-हरण यहीं अरण्य- काण्ड - अटवी पथ में होता है। इस तरह से जब हम राम कथा पर निरपेक्ष दृष्टिपात करते हैं तो ऐसा लगता है कि यह समग्र रामायण राम कथा नहीं, सीता की कथा है और इसका आरम्भ मिथिला अर्थात् जनकपुर से होता है, समाप्ति रावण के विध्वंस से। राम ने जन्म लिया, किशोर वय को प्राप्त हुए तब तक कवि न कहीं भी उनके प्रति कैकेयी के अनौचित्य को नहीं प्रकट करता। लेकिन जब सीता ब्याह कर आती हैं तब कैकेयी का राग द्वेष बढ़ जाता है।

अगर अन्तर्वीक्षा की जाय तो यही लगता है कि कैकेयी ने वनवास राम को नहीं सीता को दिया। राम को क्या वनवास ? वीर पुरुष के लिए ग्राम, नगर, भवन और वन एक बराबर हैं। उनके लिए जैसे वन वैसे नगर। राम जैसा अमित पराक्रमी पुरुष, जहाँ वह है वहीं राजा है। लेकिन सीता जैसी राजलक्ष्मी के लिए तो राजभवन ही उनकी शोभा है। वन का निवास उनके लिए विकल है। इसलिए कहना यही चाहिए कि कैकेयी ने राम को नहीं सीता को वनवास दिया। कैकेयी राम की विमाता थी, कौशल्या से बहुत छोटी थी उसकी सीता के प्रति, सीता के ऐश्वर्य को लेकर इस प्रकार का राग द्वेष होना नारी की सहज भावना है।

अरण्य काण्ड में इस प्रकार सीता को जो वनवास मिला हुआ था उसी से कुल में एक नई घटना घट गई। संयोग ही कहिए कि सीता को शत्रु के घर में निवास करना पड़ा। फिर वह सब घटित हुआ जिसकी याद संसार भर में सदैव के लिए अमर हो गई। नीतिशास्त्र में यह कहा गया है कि नारी के कारण राजवंशों का उत्थान और पतन हुआ है। तो सीता के कारण राक्षसेन्द्र रावण का सर्वनाश हो गया ।

इन सारी घटनाओं की नई धारा जिस प्रकार अरण्य काण्ड से फूटती है, यह सब राम की कथा- भूमि का विचित्र रचना सौन्दर्य है।

अटवी पथ अर्थात् अरण्य काण्ड किसी भी रामायण में बहुत बड़ा नहीं है, छोटा ही है। उसका रूप सदैव छोटा ही होता है। कवि रघुप्रताप के "राम काव्य" में भी अटवी पथ बहुत छोटा है। इस अटवी पथ में कवि ने अपने काव्य के कथा- पथ पर विशेष ध्यान दिया है। उसने वाल्मीकि रामायण को अनुदित तो किया ही है, अध्यात्म रामायण के अंश भी अनुदित किया है और इस प्रकार दोनों के मिले- जुले कथा- तत्वों से अटवी पथ की रचना की है।

1-

विराध सीता का हरण करके वन की गुफा में रखा और वाल्मीकि रामा-
यण के अनुसार राम लक्ष्मण को कंधे पर बैठाकर ले चला। उस समय के लक्ष्मण की
दीनता का मार्मिक वर्णन वाल्मीकि ने किया है। वह किस प्रकार राम की
तलवार से राम और लक्ष्मण ने विराध के एक हाथ को तोड़ डाला और फिर
उसको मार कर गिराया है। रघुप्रताप ने इसे कुछ बदला है। वे लिखते हैं कि
कुपित होकर भगवान राम ने सात बाण मारकर उसे विकल कर दिया -

राम कुपित भुज धनुहि उतारो ।
प्रत्यंचा चढ़ाय कर धारो ।।
करि संधान राक्षसहिं मारा ।
सप्त बाण रघुपति संभारा ।।
व्याकुल भयउ दुरहिं जन जैसे ।
मेघनाद सम प्रबिसेउ तैसे ।।
शोण- प्रवाह बहै महि धाई[3] ।
जनु पावक- कर पुंज बढ़ाई ।।

इस प्रसंग में कवि रघुप्रताप ने वाल्मीकि रामायण के अंशों का अनुवाद करने में उन्हीं के व्यंजक शब्दों के प्रयोग में ठीक सफलता नहीं पाई है। दो उदाहरण देखिए -

वाल्मीकि रामायण में कवि की यह उक्ति है -

स प्रवृद्ध महारौद्रः विशत्याद् भ्रमु राक्षसः ।
वृ३ भयानस्य ते बाणाः कायान्निष्पेतुराशुगाः[4] ।।

3- कृ रामखण्ड, अष्टौ पद, विश्राम 1/ सोरठा - 9.
4- वाल्मीकि रामायण, अरण्य काण्ड, सर्ग - 3/16.

विराध के प्रसंग को कवि ने यद्यपि वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म रामायण से ज्यों का त्यों ग्रहण किया है किन्तु अन्त में अध्यात्म रामायण की स्तुति तथा अपने अंतःकरण की भक्ति से जुड़ जाता है और विराध रूप धारी तुंबुर गंधर्व से उनकी वही स्तुति करवाता है जो उसे इष्ट है और उसका माहात्म्य भी उसी प्रकार गाता है जिसकी उसे आकांक्षा है -

ज्यों नमामि भगवान विराध अनेक रूप जो ।
आत्मा राम पुरान सीता राम कुमेस्थे[7] ।।

* * * *

यों तुंबुर गंधर्व जात लोक निज द्विज अवाप ।
त्यों गैया मति सबै सदा छीर-सागर-भवन[8] ।।

* * * *

मधुर विराध पुराण के श्रोता जब मति पाय ।
तौ कवि सकल रघु भई आपद नाय पलाय[9] ।।

<u>गोदावरी नदी के तट पर राम का निवास -</u>

जैसा कि पहले कहा जा चुका है अरण्य काण्ड ही राम कथा का मध्य बिन्दु है। कवि रघुराज सिंह ने अटवी पद (अरण्य काण्ड) के पूर्व कोशला पद (अयोध्या काण्ड) और बाद में आने वाले किष्किंधा पद दोनों की अपेक्षा इसका कलेवर छोटा रखा है। वाल्मीकि रामायण के अनेक कथा- प्रसंगों को उन्होंने छोड़ दिया है। फिर भी इसकी नवीनता कहीं- कहीं आते हुए कथा- प्रसंगों में ही प्रस्फुटित होती जाती है। उन्होंने राम- लक्ष्मण के संवाद में ज्यों का त्यों ले लिया है। यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण में नहीं है। उन्होंने कलेवर को बढ़ने नहीं दिया है।

7- कृ0 रामचन्द्र, अटवी पद, सोरठा - 12.
8- वही, सोरठा- 14.
9- वही, दोहा - 27.

भक्ति और वेदान्त से समन्वित निरूपण -

कवि ने अटवीं पद के इस प्रसंग में अपने अंश अन्तःकरण को वैष्णव भक्ति के अनुसार भक्ति और वेदान्त से समन्वित कर सूक्ष्मग्राही चित्र खींचा है जो दर्शनीय है -

नित्य अविद्या नर संसारी । विचारत मुमुक्षित पदधारी ।।
नाथ भक्ति-रस सुख अनुरागी । बिना प्राकृत ले पापी ।।
ताहि अविद्या हर न व्यापी । अपरउ लौकिक भ्रम नहिं व्यापी ।।
रहे भक्ति नित्य जन जेई । मुक्ति नाम नहिं लेशहु लेई[14] ।।

लेकिन लक्ष्मण के प्रश्न पर भगवान राम ने जो मोक्ष कथन किया है जिसमें ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का संबंध में व्याख्यान किया गया है वह तुलसीदास के मोक्ष कथन के बहुत निकट है। एक उदाहरण देखिए -

जो सुमन निष्ठा मों तत्पर । मम नाम मों बढ़ सुमिरनकर ।।
यहि विधि मोहि भजहिं मनलाई। भक्ति प्रसाद पुरा अवधारीं ।।
भक्ति-मुक्ति-कारन रघुनन्दन । जिमि सौरभ कारन दल चंदन ।।

* * * * *

जो मम भक्त विमुख नहिं प्रानी। परम मोक्ष लहहिं पद बानी।।
सेवक सेव्य भाव मोहिं दई । अगणित करि सुख ता कहं देई ।।
श्रद्धा-भक्ति-समन्वित जोई । यहि कहं पावत प्रेम करि सोई[15] ।।

गोमती नदी के तट की शोभा का वर्णन बहुत अच्छा तो कवि ने नहीं किया है किन्तु उसकी महिमा की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

---

14- कु० रामकथा, अटवीं पद, दोहा- 81.
15- वही, दोहा- 82, 84.

दक्षिण मुनि आश्रम के तीरा ।
बहुत सुगम गोदावरि नीरा ।।
जस द्वितीय नृप जह्नु कुमारी ।
अमल पूत भूमण्ड बतारी ।।
जल खग करहिं अनेक विहारा ।
कूजित कुसुम वारि अधिकारा ।।
मधु मकर मयूर ते पूरी ।
तट वनतरु लतावलि भूरी ।।
बहै जाहिं जहँ पुल अपारा ।
निरखीअहि सौ सोभ करारा ।।

अर्थात् गोदावरी नदी महर्षि अगस्त्य के आश्रम के निकट से बह रही है। वह दूसरी गंगा नदी है, उसकी शोभा अद्वितीय है। जिस प्रकार का यह वर्णन कवि ने किया है और आगे करेगा, उसके अनुसार अटवी पथ गोदावरी नदी और सीताहरण ये दोनों ही राम कथा के मध्य बिन्दु हैं। और गोदावरी नदी [पंचवटी] के तट पर के निवास का अपना एक विशिष्ट महत्व राम कथा में है।

<u>सूर्पनखा प्रसंग :-</u>

कवि रुद्रप्रताप सूर्पनखा के प्रसंग से इस अटवी पथ में क्रमशः वाल्मीकि रामायण से हटकर रामचरितमानस के निकट होते चले गये। वाल्मीकि रामायण में रावण ऐसा कहीं नहीं कहता कि वह राम के द्वारा मारा जा करके परम गति को प्राप्त करेगा। सूर्पनखा को आश्वासन देकर जब रावण सीताहरण का विचार करता है तब वह कहता है -

परमात्मा कर अखिल ज्यौं तउ लखियहि वैकुण्ठ ।
न त राक्षस कुल पालिबहि हति रामहिं अकुण्ठ ।। -दो0-174.

कनक मृग का विहार :-

मारीच ने कनक- मृग का रूप धारण किया और आश्रम के निकट गया। कवि वर्णन करता है कि -

> कुच प्रवाल अतिनिक्ष वर इन्द्रायुध लांगूल ।
> चित विचित्र सुगन्धि करि कोमल द्रुम गत मूल ।।

आगे वह कनक मृग आश्रम के निकट आ रहा है -

> करत दीर्घ वन आश्रम दौऊ। फिर पछार फिर सन्मुख सौऊ ।।
> चरत दूर्व अतिनिक्ष सोवार । रसत विन्दु- सा सोभित आप ।।
> त्रिमु अंकुर विटपी का चरई । कदली कर्णिकार वन सरई ।।
> मन्द मन्द फिर सन्मुख आवत। कुतुहलोक आश्रम नहीं आवत[18] ।।

फिर कवि एक नई बात लिखता है। कवि कहता है कि वह सोने का मृग अवश्य है किन्तु उसके शरीर से दुर्गन्ध आ रही है इसलिए दूसरे वनचर मृग उसके पास से भाग जाते हैं -

> करत भ्रमत मेलत कुशा चरत चौकरी भरि ।
> अन्य वनेचर मृग लेही भाग दुर्गंध विचारि ।।[19]

सीता- हरण :-

कनक मृग मारा गया और रावण ने अपनी योजना के अनुसार सीता का हरण किया। सीता-हरण के प्रसंग में तीन प्रकरण हैं -

1- सीता- रावण- संवाद
2- गीधराज जटायु का रावण से युद्ध
3- सीता का विलाप ।

18- कृ रामचन्द्र, अरवी पद्, दोहा- 227.
19- वही, दोहा- 228.

किन्तु रावण जटायु का उपदेश कहाँ सुनने वाला था। दोनों का युद्ध शुरू हो गया। कवि ने विस्तार से इसका वर्णन किया है। कवि ने कुछ नवीन उप- मानों की कल्पना की है। वह कहता है कि जटायु और रावण ऐसे लड़ रहे हैं जैसे ऐरावत हाथी और अंजन गिरि हों। दोनों भिड़कर होकर ऐसे भिड़ रहे हैं जैसे विन्ध्य पर्वत एवम् हिमवान हों। लगता था मानों बहुत बड़ा सागर हो और उसमें तिमिंगिल और राघव मच्छ लड़ रहे हों[26]।

अन्त में रावण के आघातों से जटायु पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह बलहीन और तेजहीन हो गया था। कवि कहता है कि जटायु उस समय ऐसा ही दिखाई पड़ा जैसे शिशिर ऋतु में बादलों के बीच सूर्य हों -

तेज निकसि छिति परा जटाई ।
सिसिर मेघगत रवि दरसाई[27] ।।

कवि की यह उपमा भाव का ठीक ठीक चित्र उपस्थित करती है। शिशिर ऋतु का सूर्य वैसे ही मन्द होता है और जब वह बादलों के बीच पड़ गया फिर क्या कहना। जटायु हारकर अब मरणासन्न हो गया है। कवि ने उसकी सटीक उपमा दी है।

रावण द्वारा सीताहरण कर लिये जाने के उपरान्त कवि ने शुकराज को पुनः अवतरित किया है। जब राम सीता की खोज में लता- गुल्मों, वन वनस्पतियों, पशु- पक्षियों आदि से पूछते विलपते आगे बढ़ते हैं, उस प्रसंग में कवि ने कुछ मार्मिक उक्तियाँ कही हैं। राम गोदावरी आदि नदियों से सीता के बारे में पूछ रहे हैं। यह बात सब जानते हैं कि सीता का हरण रावण ने किया है किन्तु रावण के भय से कोई जवाब नहीं बोल रहा है -

गोदा आदि जडारूप जेते । पूछेउ पृथक् पृथक् करि तेते ।।
रावन भय बस भाखु न कोई । जदपि राम मनरञ्जन सोई ।।
पूछनहिं गोदा सुनु आई । तहँ अमरा सिय-चरन बताई।।
तब पुनि अमरारि बिलोई । रावन सत्रु कहहिं नहिं कोई।।

26- कृ० रामचरित, अरण्य पद, दो०- 290.
27- वही, दो०- 291.

आगे चलने पर धनुष तुणीर और टूटा हुआ रथ दिखाई पड़ा जिससे यह अनुमान हुआ कि यहाँ पर युद्ध हुआ है। वहाँ पर रक्त भी पड़ा था। इसे देख कर राम के हृदय में शंका होती है कि क्या सीता को किसी ने मार डाला। वे यह भी सन्देह करते हैं कि सीता के लिए युद्ध किसने किया। इस प्रकार के अन्तर्द्वन्द्वात्मक प्रश्नों को उठाकर कवि ने इस प्रसंग को मार्मिक बनाया है -

कार्मुक भग्न खण्डित तुणीरा । लखि प्रिय अनुजहिं कह रघुबीरा ।।
परेउ विशीर्ण कवच महिमाहीं। अनुज- कहाँ सीता किन आहीं ।।
पश्यहु लखन सोर्ण कटिकाही । विच्छिन्न मणि-कनक सनाही ।।
मुकुट नाना माल्य विकासा । मनहुँ भानु महि परेउ निरासा ।।
पतित रुधिर महि परेउ दिखाई।सीय-सोच शंका उर धरि पाई ।।

* * * *

को प्रिय-हित सँग्रह रन कारे । अनु-रथ-भग्न कवच महि डारे ।।

आगे जब उन्हें जटायु भूमि पर खून से लथपथ दिखाई पड़ा तब राम को सन्देह हुआ कि अवश्य ही इस राक्षस ने सुलक्षणी सीता को खाया है। राम को क्रोध आ गया। उन्होंने धनुष तान लिया और कहा, अब इस त्रिलोक में कौन तेरी रक्षा कर सकता है -

पतित भूमि व्याकुल खगन्द लख बहु रुधिर गात ।
देखि-तेज-आभास तेहि हरि लखनहिं कह बात[29] ।।

यह अवश्य भखेउ बैदेही । गीध-रूप धर भेष लेही ।।
भखेउ कुरँग लोचनिहि यहा। क्रोधातुर उत्कम्पित देहा ।।
बोलेउ तब धनु धरि रघुराई। गहउ महा प्रलय-सम्भाई ।।
त्रिय- दुःख अब परेउ निवारा। कहु कस को त्रिलोक रखवारा।।

29- कु0 रामकाण्ड, अठवीं चषक, दोहा- 410.

सीता- विलाप :-

सारे प्रसंग में कवि ने सीता का विलाप कई बार दिखाया है। सीता के विलाप में कवि ने कुछ तो वाल्मीकि के कुछ अंशों का अनुवाद कर दिया है और कुछ अपनी नई उद्भावनाएँ भी की हैं। जिस प्रकार सीता दुःखी होकर राम और लक्ष्मण को रट लगा रही है, इस बात को कवि ने कुछ सरल भाषा में चित्रित की है -

> क्रोशंती प्रिय राम राम राम रविकार करे ।
> कह विलाप हरि-नाम रट रावन देवर सहित[32] ।।

कवि ने विलाप में कुछ अपनी नई उद्भावनाएँ की हैं। वह कहता है कि रावण से गृहीत सीता ऐसे लग रही थी जैसे बुध ने रोहिणी को आक्रान्त किया हो। फिर दूसरी उपमा दी है कि रावण की गोद में सीता ऐसे लग रही थी जैसे हिमालय की गोद में गंगा नदी। ये उपमाएँ मन को प्रसन्न तो करती हैं किन्तु उपमा का सही सौन्दर्य नहीं उपस्थित करतीं -

> गहेसि जाय सीतहिं जिमि सोई ।
> बुध ग्रसित जनु रोहिणि होई ।।
> असुर- क्रोड सिय सोहति कैसे ।
> नगाधिपति मह गंगहि जैसे[33] ।।

इस प्रसंग में कवि भक्ति और विनोद की बातें भी कह जाता है। कवि कहता है कि सीता का यह हरण एक साथ आनन्द और विषाद दोनों की सृष्टि कर रहा है। देवलोक में हर्ष है और सीता को कष्ट है। कवि कहता है कि छाया सीता का हरण देखकर ब्राह्मण समूह आनन्दित हो रहा है। वे सोच रहे हैं कि इसी बहाने मुरारि रावण का वध हो जायेगा। इससे वे सभी आनन्दित हैं -

---

32- कु० रामचरण,बत्ती पद, वि०-17, दो०- 97.
33- वही, वि०- 17, दो०- 97.

तब्कर पन्थ राम वह पाऊ।
नाम कहावहि बानर राऊ।।
उन्चासरातिमवि वस भावा।
रवं नविचर को जोग बताता।।

रावण समुद्र के ऊपर उड़ता हुआ अपने कनक दुर्ग लंका पहुँच गया। समुद्र भी सीता का हरण देखकर बहुत क्षुब्ध हुआ। विश्राम के अन्त में पाँच छन्दों में कवि ने लंका नगरी का वर्णन किया है, जो कल्पना की व्यापार और सत्य कम है।

लंका में सीता का निवास -

कवि ने अठवीं पद के उन्नीसवें विश्राम में रावण द्वारा हरण की हुई सीता को लंका के अशोक वन में निवास तथा रावण द्वारा सीता को अपने वैभव का प्रलोभन दिये जाने का चित्रण कथा की दृष्टि से अत्यन्त रोचक बना दिया है। इसमें कवि ने कुछ नई बातें भी कही हैं और वाल्मीकि रामायण में कही हुई बातों का अनुसरण भी किया है। रावण के चरित्र को कवि ने वैसे ही ऊंचा रखा है जैसे वाल्मीकि ने रखा है। रावण सीता से छल की बात न कर अपने वैभव से प्रलोभन और आतंक की बात ही करता है।

वाल्मीकि रामायण अरण्य काण्ड के तीन सर्गों [54, 55 तथा सर्ग 56] की कथा को कवि ने अठवींपद के एक ही- उन्नीसवें विश्राम में समेट लिया है। कथा के सम्बन्ध वही रखे हैं जो वाल्मीकि रामायण में हैं। अर्थात् रावण पहले सीता को अपने भवन में ले जाता है और अपने वैभव का वर्णन कर अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है। सीता उसे तिरस्कृत कर देती है तब उन्हें अशोक-वन में राक्षसियों के पहरे में रख देता है। सीता को हरण कर लंका में पहुँचने के बाद वह अपने प्रमुख आठ राक्षस वीरों को जन-स्थान में जाने की आज्ञा देता है जो खर के मारे जाने से अब सूना स्थान हो गया है। वहाँ राक्षसों का सर्व-स्व नहीं रह गया है। उन आठों राक्षसों को भेजकर उनको यह निर्देश देता है

निविड़ गगन विद्युत आकारा ।
चपला चम चिरि च्युत चमकारा ।।
दादुर मत्त व्याघ्र जौं गावहिं।
जीव जन्तुनि सरित बिरावहिं ।।
बरना उछित उड़ि फुहारें ।
बन्द ग्रिष्टि- सम सौं अधिकारें ।।

षष्ठम अध्याय

सप्तम अध्याय

किष्किंधा - पर्व

किष्किंधा पर्व के मुख्य कथा प्रसंग -

किष्किंधा पर्व के कथा प्रसंगों में कवि ने प्राय: वाल्मीकि रामायण का अनुसरण किया है किन्तु समग्र ग्रन्थ में नई उद्भावनायें प्रकट हुई हैं उनमें से जो नवीन बातें किष्किंधा पर्व में कवि ने प्रकट किया है वे आवश्यक हैं जो निम्न-लिखित हैं -

1- राम- सुग्रीव मैत्री एवम् बालि-वध ।
2- ऋतु-वर्णन तथा राम-लक्ष्मण संवाद के माध्यम से आत्म चर्चा ।
3- भृगु पुराण का प्रसंग ।
4- कल्कि का प्रसंग ।
5- बुद्ध चरित्र ।
6- वध-दंड- विधि ।
7- आयुर्वेद प्रसंग ।
8- राम - कथा में प्राकृतिक छटा का चित्रण ।
9- सीतान्वेषण ।
10- शरद- वर्णन ।

1- राम- सुग्रीव मैत्री एवम् बालि- वध :-

किष्किंधा काण्ड राम कथा के मध्य केन्द्र के उत्तरार्ध की कथा का प्रारम्भ है। इसमें कथा की शुरुआत सुग्रीव की मैत्री और बालि के वध से होती है जो वास्तव में लंका पर राम की विजय की सूचना देती है। यदि राम सुग्रीव की मैत्री करने में सफल न होते अर्थात् बालि को मारने में समर्थ न होते तो अगला कथा-प्रसंग क्या होता यह नहीं कहा जा सकता । कथावस्तु की योजना के अन्तर्गत

सुग्रीव की मैत्री पताका स्थान पर तथा बालि का वध प्रकरी के रूप में है। कथा-वस्तु के संगठन के सिद्धान्त महाकाव्य और नाटक दोनों में बराबर होते हैं। बालि-वध और सुग्रीव की मैत्री का जो प्रसंग है जो वाल्मीकि ने जैसा वर्णन किया है उसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन परवर्ती राम कथा के गायक नहीं कर पाते, वह उसी प्रकार सभी राम कथाओं में मिलता है। कवि रुद्र प्रताप भी उसी परि-पाटी में सुग्रीव मैत्री और बालि के वध का वर्णन कर राम के शौर्य को उजागर क करते हैं।

2- ऋतु- वर्णन एवम् राम लक्ष्मण संवाद :-

किष्किंधा काण्ड में वर्षा और शरद् ऋतु के वर्णन प्रायः सभी कवियों ने अप-नाये हैं। अरण्य काण्ड में हेमन्त का जो वर्णन महर्षि वाल्मीकि ने किया है उसकी अपनी मौलिकता है। वह मौलिकता दूसरों के वर्णन में नहीं है। हमारे आलोच्य कवि रुद्र प्रताप सिंह वाल्मीकि का ही अनुकरण करते हैं और जहाँ तहाँ प्रायः उन्हीं के भावों का अनुवाद करते हुए चलते हैं। उनकी मौलिकता यह है कि कहीं- कहीं पर कथा में नव प्रसंगों की उद्भावना कर दी है। उनकी यही मौलिकता ही तुलसीदासोत्तर रामकाव्य की नवीनता है। राम कथा में उनकी इस मौलिकता को जब हम दृष्टिगत करते हैं तब सम्पूर्ण किष्किंधा पद नव कथा प्रसंगों, नई वार्ताओं और नई उद्भावनाओं से भरा हुआ है।

प्रारम्भ में सुग्रीव मैत्री, बालि का वध, सुग्रीव का राज्याभिषेक, प्रवर्षण गिरि पर वर्षा ऋतु और वर्षा काल में सीता के लिए राम का विरह जन्य शोक कवि रुद्र प्रताप ने आदि कवि के अनुसार ही वर्णन किया है। उसके बाद कवि कथा को नया मोड़ देता है। लक्ष्मण ने देखा कि राम विरह वियोगजन्य शोक से पीड़ित हो रहे हैं और फिर उन्होंने राम से प्रश्न करना प्रारम्भ कर दिया -

किन्तु हमारे कवि रुद्र प्रताप ने राम के इस विरहजन्य शोक समय में वर्षाकाल को व्यतीत करने के लिए नई- नई वार्ताओं का शुभारम्भ किया। ये प्रश्न लक्ष्मण के हैं जो राम से पूछते हैं और राम उनका उत्तर देते हैं। कहीं इन्हीं प्रश्नों को सुतीक्ष्ण और अगस्त्य के माध्यम से और कहीं शिव और पार्वती- सम्वाद के रूप में। राम का सीता- विरह काल कैसे व्यतीत हो इसकी अनोखी कल्पना कवि रुद्र प्रताप ने की है। उनके भाव लोक में यह बात दो तरह से उदय होती है -

1- एक तो वे राजा हैं और
2- दूसरे उन्हें अपने किसी ऐसे गुरु का सान्निध्य प्राप्त है जो अनेक शास्त्रों में निष्णात है। उन्होंने अपने अनुकूल श्री पं० रुद्रमणि का वर्णन ग्रंथ पद्य के आरम्भ में किया है।

यह हम जानते ही हैं कि आज से दो सौ वर्ष पहले वर्षा काल में शान्त बैठ कर पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ की जाती थीं। तब छापे की मशीन नहीं थी। वर्षा काल के कारण आवागमन बन्द रहता था। वह चाहे राजा हो अथवा योगी, वह चातुर्मास व्यतीत करता था। भगवान राम का भी चातुर्मास बीत रहा था और वह सीता- वियोग के ताप से तप्त थे। इसे वर्षा के बादल शीतल नहीं कर सके थे। हमारे कवि रुद्र प्रताप भी जो राम के अनन्य भक्त हैं इस ताप की आग से प्रभावित रहे होंगे। अतः उन्होंने लक्ष्मण के द्वारा किये गये प्रश्नों के माध्यम से राम द्वारा शास्त्र चर्चा किये जाने का अनुकूल बहाना निकाला और राम की छटा का उदय अपने मानस पटल पर किया जिससे मन का यह ताप ठण्डा होता है। इन प्रश्नोत्तरों के माध्यम से अनेक शास्त्रों की विशद चर्चा इस किष्किंधा पद्य में होती है जो और किसी भी अन्य रामायण में प्राप्त नहीं है। इन शास्त्रों की विस्तृत चर्चा में कई नवीन बातें सामने आती हैं। जो न हो अपने गुरु श्री रुद्रमणि से कवि ने जो शिक्षा प्राप्त की थी उसी को चरितार्थ किया है। अथवा यह भी हो सकता है कि कवि अपने गुरु श्री रुद्रमणि से इस कथा की उद्भावना का बोध प्राप्त किया हो। इस प्रसंग में जो अनेक चर्चायें की गई हैं उनकी एक लम्बी सूची है और प्रस्तुत पुस्तिकान्तर्गत रामखण्ड में किष्किंधा पद्य की समाप्ति।

इस शास्त्र चर्चा की सूची मुख्य शीर्षकों में इस प्रकार है :-

1- वैष्णव धर्म के अनुसार आह्निक पूजापाठ जिसमें तर्पण विधि तथा वेद निरूपण भी सम्मिलित है।

2- राम रहस्य निरूपण, राम व्रत माहात्म्य, राम व्रत रास वर्णन, राम - महिमा, राम नाम महिमा वर्णन, राम रहस्य योग वर्णन ।

[अ] श्री राम पूजा रहस्य- वर्णन ।
[ब] राम जन्म निरूपण ।
[स] पीठ पूजा भूत शुद्धि वर्णन ।

3- तारक माहात्म्य वर्णन

4- काकरी मार्ग वर्णन

5- तुलसी माहात्म्य वर्णन

6- दया धर्म, सखी रहस्य, वैरागादि ज्ञान वर्णन

7- धाम के कुण्ड निर्माण वर्णन एवं प्रयोजन

8- पुरश्चरण रहस्य वर्णन

9- गायत्री वर्णन

10- योग प्राणायाम [यम, नियम, आसन, प्राणायामादि] वर्णन

11- ब्रह्म विद्या ज्ञान, गीता भूमिका कथन, ब्रह्म विद्या निरूपण ।

12- शारीरिक अर्थात् आत्म निरूपण ।

13- मोक्ष पद वर्णन ।

14- परशुराम चर्चा वर्णन [आग्नेय पुराण की चर्चा]।

15- सत्य नारायण व्रत-कथा- वर्णन ।

16- राम की मूर्ति स्थापना का विवेक ।

17- चतुर्युग भेद का वर्णन ।

18- सन्ध्या, बलि वैश्वदेव, अतिथि पूजन, भोजनादि विधि वर्णन ।

19- अष्टयाम पूजा ।

20- रास- धर्म वर्णन ।

21- वैश्य- शूद्रों का धर्म वर्णन ।

22- तीर्थों का माहात्म्य [राम तीर्थ, कुरुक्षेत्र, अन्य कुछ तीर्थों के साथ गंगा का माहात्म्य]

23- सप्त पुरियों का माहात्म्य ।

24- राजा नल की कथा ।

25- कृष्णोपाख्यान [कृष्णजन्मादि चरित्र, रासचरित्र, युद्धपर्यन्त विविध चरित्र, व भक्ति निरूपण ।

26- कल्कि अवतार निरूपण ।

27- बुद्धोपाख्यान ।

28- कपिलोपाख्यान, सांख्यविद्या वर्णन, विराट् स्वरूप वर्णन, भक्तियोग, कर्म विपाक योग, सांख्य योग, आत्मस्वरूप निरूपण तथा इसी के अन्तर्गत बुद्ध की बोधित अवतार का वर्णन ।

29- विशेष- विशेष महीनों, तिथियों के व्रतों का वर्णन, मलमास का वर्णन, एकादशी माहात्म्य वर्णन ।

30- आयुर्वेद वर्णन, पारद शुद्धि, रसायन वर्णन, रस वर्णन, रस भूपती वर्णन, स्वच्छ रसायन निरूपण आदि ।

इन अवान्तर कथाओं के द्वारा जो राम-लक्ष्मण- संवाद, शिव- पार्वती सम्वाद, अगस्त्य- सुतीक्ष्ण सम्वाद आदि वर्णन किये गये हैं उनमें सीता का विरहजन्य ताप भी राम के हृदय में सतत होता रहा। फिर शरद् काल आया। सुग्रीव फिर राम के पास आए और सीता को ढूंढने के लिए चारों दिशाओं में वानरों ने गमन किया। वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही यहां पर दक्षिण दिशा की ओर वानरों का जाना, प्रायोपवेशन, सम्पाती से भेंट और समुद्र तट पर विचार- विमर्श, हनुमान का लंका पार करने के लिए विचार करना आदि वर्णित है। इनमें जो अनेक नव कथा प्रसंग उद्भावित हुए हैं उनमें पुराण की दो कथाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पहली कथा परशुराम चरित्र से सम्बन्धित है और दूसरी कथा कल्कि अवतार से सम्बन्धित है।

<u>भृगु पुराण का प्रसंग :-</u> परशुराम चरित में कवि ने भृगुपुराण का वर्णन किया है। दस महाविद्या एवम् छिन्न मस्तिका नामक तान्त्रिक देवी का वर्णन किया है। दस महाविद्या एवम् छिन्नमस्ता वस्तुतः बौद्ध तान्त्रिकों की विद्या से सम्बन्धित हैं। हमारा विशेष ध्यान भृगुपुराण की ओर जाता है। ऐसा लगता है कि कवि ने परशुराम के चरित्र को भिन्न- भिन्न रूप में पढ़ा है। कवि ने दो बातें लिखी हैं - एक बात तो यह है कि सहस्त्र बाहु ने मुनि जमदग्नि को मार दिया। जमदग्नि कुमार के आने पर रेणुका पति के साथ सती हो गई। यह मत भृगुपुराण का है। कवि भृगु पुराण का उल्लेख करता है -

भृगुपुराण कर मत कहब सहस्रबाहु मुनि मारि ।
भई आगमन पुत्र के पति संग ताकी नारि[2] ।।

दूसरे पुराणों का मत भिन्न है। उनका कहना है कि सहस्त्रबाहु ने केवल गाय का हरण किया जब मुनि ने उन्हें रोका तो उन्होंने आश्रम में आग लगा दी। जब रक्षा कहा गया तब परशुराम आश्रम में आये और पिता के अपमान की बातें सुनीं। पिता की इच्छानुसार वे सहस्त्रबाहु से बदला लेने तथा उनकी गाय को वापस लेने के लिए चल पड़े। यहाँ पर परशुराम को दस महा विद्या की सिद्धि तथा छिन्न मस्तिका देवी के सिद्ध किये जाने का उल्लेख है -

कोटक कोस अह ते सुमिरत दस विद्या माँ मेव ।
तथा उग्र देवी भई छिन्न मस्तिका देव[3] ।।

कवि ने यहाँ पर कथा के दोनों भिन्न रूपों का विस्तार से वर्णन किया है। निश्चित रूप से उसने भृगुपुराण को पढ़ा है। और यह भृगुपुराण उसे अपने गुरु से प्राप्त हुआ होगा। एक बार मुनि जमदग्नि ने कोप करके राजा सहस्त्र

2- कृ रामचन्द्र, किष्किंधा पद, दोहा- ।।46.
3- वही, दोहा- ।।47.

कथा का दूसरा रूप है जहाँ सहस्त्र बाहु ने मुनि को अपमानित किया और गाय छीन ले गया। उस गाय को छीन लिया जिस गाय की शक्ति से राजा और उसकी सेना का वृहद् रूप से सत्कार किया था। गाय के छीनने के बाद परशुराम आये और पिता के अपमान का बदला लिया। कथा का यह दूसरा रूप पुराणों में सर्वत्र पाया गया है। कवि ने कथा के इन दोनों स्वरूपों का जिक्र यहाँ पर किया है और निश्चित रूप से इसका आधार भृगुपुराण है। यह मूल सूचना इस काव्यग्रन्थ से मिलती है।

<u>कल्कि का प्रसंग -</u>

कल्कि अवतार के प्रसंग में कवि ने पद्मावती से कल्कि के विवाह का वर्णन किया है। कवि लक्ष्मनाथ ने किष्किंधा पद के विश्राम ९५ में कल्कि अवतार की कथा कही है। कवि ने इस अवतार के वर्णन का संकल्प इसलिए लिया कि भाषा अर्थात् हिन्दी में इसकी कथा नहीं मिलती है, और उन्होंने लिखा है कि अतएव मैं इस कथा का निरूपण करूँगा -

अपर चरित बहु सन्त बखाना ।
नहिं भाषा कछु कल्कि पुराना ।।
ताते हरि चरित्र यह करऊँ ।
गाइ.गो ब्राह्मन कर पद धरऊँ ।।

इस कल्कि पुराण के सम्बन्ध में कवि ने तीन नई बातें लिखी हैं -

पहली बात तो यह कि कल्किपुराण का जो रूप इस समय पाया जाता है उसमें सम्भलपुर उत्कल [उड़ीसा] में बताया गया है और कल्कि भगवान सम्भलपुर से चलकर नर्मदा नदी माहिष्मती तक आकर यवनों का संहार कर धर्म की ध्वजा फहराते हैं। किन्तु कवि ने जो नई बात लिखी है वह यह है कि सम्भलपुर गंगा नदी के तट पर है, सम्भवतः पश्चिमी उत्तर प्रदेश में -

---

6- कल्कि पुराण - सम्पादित श्रीराम शर्मा

इसका आधार प्राप्त नहीं है इस कल्कि चरित्र को कवि ने अपने गुरु से सुना और सम्भवत: इसी को कवि ने अपने इस काव्य ग्रन्थ में रामायण की भाषा में निबद्ध कर दिया। क्योंकि विश्राम के अन्त में कवि इस चरित्र का गायक अपने को कहता है -

इदं कल्की गुणादित्यं पवित्रं लोक मंगलम् ।
कविर्ना ब्रह्म भूपाले: कारितं तेन समुत्सुको:[10] ।।
- श्लोक 497.

<u>बुद्ध चरित्र :-</u>

कल्कि अवतार के समान ही बुद्ध अवतार के भी प्रसंग का वर्णन है जिसमें बुद्ध अवतार का जो कारण दिया गया है न तो वह इतिहास सम्मत है और न ही अन्तर्बोध के लिये कुछ बुद्धचरित्र से वह मेल खाता है। कवि लिखता है कि अजिन ब्राह्मण मगध के राजा थे। गरुड़ उन्हें साथ रोप से लाए थे। वे सम्पूर्ण उत्तर भारत के राजा हो गये। जरासन्ध कुल के नष्ट हो जाने पर वह भृगु के समान प्रबल ब्राह्मण हुए। अनेक जप, यज्ञ, दान उन्होंने किया। पुत्र धर्म, नित्य हवन, सन्ध्या, षट्कर्मादिक सारे वैदिक क्रियाकलाप करते थे। वे वेद के व्यवहार में कुशल थे। उनका पुत्र मार्जिन हुआ जो लोक में बुद्ध के नाम से प्रख्यात हुआ। केश उसके घुंघराले, रंग चम्पक के समान और आँखें कमल के समान थीं। पैदा होते ही उन्होंने माता- पिता से कहा कि मैं विष्णु का नौवां अवतार हूं। आगे उन्होंने जो कुछ किया वह नीचे की चौपाइयों से प्रकट होता है -

तिन्ह के भो मार्जिन तनय बुद्ध लोक प्रख्यात ।
अलक केश चम्पक गौर जिन कमल दृग जात[11] ।।

10- कु० रामखण्ड, किष्किंधा पद, श्लोक - 497.
11- वही, दोहा- 239.

जहँ निंदक बलि बौध मत गमनह त्यागी अगाध ।
तउ निरखहि हिंसा करहिं कतहिं न मन मों व्याध ॥[12]

इस प्रकार बुद्ध के अवतार का यह वर्णन कि जाति से वे ब्राह्मण थे और अपने ही ब्राह्मण धर्म एवम् राज्य को नष्ट करने के लिए उन्होंने सारे क्रिया-कलाप किये और धर्म का नया व्यवहार प्रतिष्ठित किया। यह कथा अन्य पोथों से बिल्कुल भिन्न है। सम्भवतः यह जानकारी कवि रघुनाथ को अपने गुरु से प्राप्त हुई ।

जप-यज्ञ विधि :-

कवि ने जप, यज्ञ, स्नान एवम् यज्ञ- कुण्ड के सम्बन्ध में विस्तार से स्मृतियों के अनुसार और सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दी के धार्मिक सम्प्रदायों के अनुसार वर्णन किया है। ये विधियाँ कवि ने परम्परा के अनुसार कही हैं। इनमें कोई नई बात नहीं कही है। विश्राम 12 में इसका सम्यक् वर्णन किया है।

लेकिन पुनः कवि ने विश्राम 24 में यज्ञ- कुण्ड निर्माण के सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन किया है। यज्ञ- कुण्ड के सम्बन्ध में प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में उल्लेख नहीं पाया जाता। ग्यारहवीं- बारहवीं शताब्दी में लिखित महाकाल संहिता में कुण्ड निर्माण, उसके स्वरूप एवम् उसी क्रम पर विस्तार से बताया गया है। चतुरस्र कुण्ड, आयताकार, अश्वाकार, अर्ध वृत्त, त्रिकोण कुण्डों के निर्मित करने के लिए तन्त्रानुसार विधि बतायी गयी है।[13] कवि ने इसके भी आगे बढ़कर सूक्ष्म ब्योरा दिया है। उसका यह विवरण महाकाल संहिता से अधिक विस्तृत और विपरीत भी है। महाकाल संहिता में कुण्ड को योनि का प्रतीक नहीं माना गया लेकिन जहाँ तक सम्भावना की जाती है और जो प्रमाण उपलब्ध है उसके अनुसार बौद्ध तान्त्रिकों ने यज्ञ वेदी में कामोपभोग एवम् योनिस्वरूप की कल्पना कर उसे विकृत रूप प्रदान किया ।

12- गु0 रामचन्द्र, किष्किंधा पद्, दोहा- 2393.

13- महाकाल संहिता

रवि सम्दं सुविशीर्ण सौधाय ।
तिमि कन किला विधिविधि मदिलाय ।।
भौ विलीयमान कन कोटर ।
निमीलित काम कर गोटर ।।
विगलित बहु मालति प्रन बेली ।
जाम्हित रवि मव अस्त पिलेवी ।।

जाना रचित नरेन्द्र गन देवा आग सिवाय ।
बेर परस्पर छिमन्द के ओड मार्ग दरसाय [17] ।।

<u>सीतान्वेषण का प्रसंग :-</u>

वाल्मीकि रामायण में सीता की खोज करने के लिए सुग्रीव ने दूतों को चारों दिशाओं में भेजा। चारों दिशाओं में जाते समय वन, पर्वत, नदी, द्वीप, भूखण्ड आदि अन्य सभी भौगोलिक प्रदेशों का बड़ी ओर विस्तृत वर्णन किया गया है। हमारे कवि ने भी बहुत कुछ इसी प्रकार के प्रसंग उद्धृत किये हैं और कई स्थलों पर तो ज्यों का त्यों वाल्मीकि का अनुवाद ही कर दिया है। इनमें पूर्व और पश्चिम दिशा के वर्णन ज्यादा विस्तार से हैं। इनमें कवि ने यह विस्तृत ही कर दिया है कि वह राम- काल के भूगोल का वर्णन कर रहा है-

भागीरथी अरु कउशिकी सर सरयू सरित अपार ।
जल थल कूल कुरोटन्ह सौधेहु पवन कुमार ।। दो०- 2700

कालिन्दी जमुना जोह ज्वाला ।
जामुन नाव महागिरि ताला ।।
सरस्वती अरु सिंधु नदीधा ।
सोन सरित मणि जल कपि भूपा ।।

17- कु० रामायण, किष्किंधा पद, दोहा- 183.

सप्तम अध्याय

पंचम अध्याय

दूत-पद (सुन्दर काण्ड)

दूत पद के नये कथा प्रसंग :-

दूत पद अर्थात् सुन्दर काण्ड में कवि रुद्र प्रताप ने प्रायः वाल्मीकि रामायण का अनुसरण करते हुए ही कथा को निबन्धित किया है। कथा की दृष्टि से उसमें नव प्रसंगों की उद्भावनाएँ बहुत कम ही हुई हैं। कवि बहुत कल्पना में नहीं गया है। यही कारण है कि दूत पद की भाषा में और काण्डों की भाषा की अपेक्षा सरलता और प्रवाह अधिक है। यदि हम नव कथा- प्रसंग की बात लें तो ऐसी तीन बातें मुख्य रूप से हमारे सामने आती हैं -

1- हनुमान सीता से बात करने के विषय में जब सोचते हैं तो वह किस भाषा का प्रयोग करें, जो वाल्मीकि ने भी लिखा है लेकिन कवि रुद्र प्रताप विशेष रूप से उल्लेख करते हैं।

2- श्री हनुमान द्वारा गिराई गई मुद्रिका का वर्णन - यह वर्णन वाल्मीकि रामायण में भी बाद का प्रक्षिप्त अंश है। जैसाकि विद्वानों के एक वर्ग का मत है कि अंगूठी पहनने की प्रथा यूनान से भारत आई है। इसका हम आगे विवेचन करेंगे।

3- दूत पद के तीसवें विश्राम में कवि ने राम के प्रताप का वर्णन किया है और उनके भक्त वत्सल स्वरूप का प्रभाव चित्रित किया है। यह कवि की निज भक्ति का वर्णन है जो वाल्मीकि से भिन्न है।

इसके अतिरिक्त दूत पद के अन्तिम सत्तावनवें विश्राम में कवि ने अपने कुल का वर्णन किया है। यह भी उसकी अपनी नई बात है।

हनुमान सागर लाँघ कर जब लंका नगरी में पहुँचे और सूक्ष्म रूप धारण कर लंका का वर्णन प्रारम्भ किया तो लंका का प्राकृतिक वैभव जैसा वाल्मीकि ने किया है वैसा हमारा यह कवि नहीं कर पाता। लेकिन लंका के दुर्गम और अजेय

होने का चित्र खींचा है, क्योंकि लंका की विजय की बात राम और उनके दूत के सामने आनी ही है। इस दृष्टि से यह वर्णन दूत की मानसिक स्थिति का चित्र है और शत्रु के उत्कर्ष का वर्णन कर अपने नायक की विजय की महा-नता स्थापित करने की कवि पद्धति भी है।

दूसरे विश्राम के आरम्भ में ही हनुमान के मुख से कवि कहला रहा है -

कोउ राच्छस गहि दसन कराला ।
कोउ त्रिसूल कोउ पट्टिस भाला ।।
राखहिं राच्छस अगनित भाँती ।
जेहि प्रवेस नहिं लहहिं अराती ।।
महती गुप्त मग्ग करि जानी ।
दुस्तर पुनि सागर त्रिन मानी ।।
पुनि रावन रिपु वीर बिहारी ।
भय विकल बहु मन जन भारी ।।
आइ करहिं का सब भट बानर ।
सोचहिं सब निरखै बल आदर ।।
नहीं सुख करि बीतत बासू ।
निरखत ही पुर देवन्ह त्रासू ।।
रावन भुज पालित यह लंका ।
विकट दुर्ग पुनि सागर बंका ।।
नहिं क्वापि यह आवन लायक ।
जहँ अति कष्ट आइ रघुनायक ।।
आइ करहिं का सकल प्रभु भालु सेन दोउ भाय ।
व्यर्थ पराक्रम होहिंगे कपि अस रहेउ दुराय[1] ।।

1- कृ रामायण, सुन्दर, दोहा- 45.

इसके अनन्तर कथा- प्रसंग की पहली नवीनता में कवि ने हनुमान के मन में तर्क वितर्क पैदा किया है जब वे बातचीत करना चाहते हैं, जब वे सीता को देखकर पहचान गये और आश्वस्त हो गये कि सीता का पता मैंने पा लिया, हनुमान ने विचार किया कि सीता को तो हमने देख लिया और भगवान राम से जाकर सीता का पता बता सकूँगा लेकिन सीता से बिना सम्भाषण किये हुए उनके मुख से बिना उनका समाचार जाने हुए जाना उचित नहीं है -

तब का कहिहौं प्रभु पहिं जाई ।
बिनु सदेस सोय कर पाई ॥
क्रोधानल करि जारिहिं मोही ।
सीय-विरह व्याकुल अज-द्रोही ॥

अत: हनुमान ने सोचा -

जउँ बिनु सिय सम्भाषन कीन्हें ।
राम अउ कपि पति सुधि लीन्हें ॥
व्यर्थ होय सब आगमन सहित बानरी जूह ।
यहाँ मिलहिं नहिं प्रान सिय करउँ कवन अब ऊह ॥[1]

इसलिए सीता से बातचीत किये बिना हनुमान की सीता खोज व्यर्थ हो रही थी। यहाँ कवि राम दरबारी अपने में हनुमान के मुख से कहलाता है कि अगर सीता के मुख से कहा हुआ संदेश भी नहीं लिया तो वे अज-द्रोही राम मुझे क्रोधानल में जला देंगे। मेरा आना यहाँ व्यर्थ हो जायेगा। सारी बानरी सेना का आगमन व्यर्थ हो जायगा यदि सीता के मुख से कुछ संदेश नहीं प्राप्त किया। क्या बताऊँ, सीता के प्राण यहाँ नहीं हैं नहीं तो दिखा ही देता कि सीता यहाँ है ।

1- कु० रामखण्ड, सुन्दर, चौपाई- 250.

इतना तय निश्चय होने के बाद सीता के सामने तब दो तर्क और थे- एक तो यह कि वे किस वेश में जायें और दूसरा यह कि वे किस भाषा में बात करें। यह तर्क वाल्मीकि रामायण में भी आया है। वहाँ पर हनुमान यह कहते हैं कि मानुषीय संस्कृत भाषा में ही सीता से बोलूँगा। ब्राह्मण के समान संस्कृत वाणी में नहीं बोलूँगा। यदि ब्राह्मण के समान संस्कृत वाणी का प्रयोग मैं करता हूँ तो निश्चित है कि सीता मुझे रावण समझ लेंगी और बहुत भयभीत हो जायेंगी। यह निश्चय कर उन्होंने मानुषीय संस्कृत वाणी का प्रयोग किया[3]।

कवि रुद्र प्रताप ने इस प्रसंग को कवि कौतुक रूप से लिया है और हनुमान किस भाषा का प्रयोग करें इसमें कवि ने अपनी कल्पना का लम्बा विस्तार दे दिया। इसमें वाकुरी, नागभिदा, मागध, कर्णाटक, द्राविड़, तैलंग, गुर्जरी, आभीरी, वार्वती, बंग, उत्कली, केरली आदि भाषाओं का उल्लेख किया है और भाषाओं के प्रयोग करने के कारण भी बताये हैं -

---

3- वा. रा. सुन्दर काण्ड, सर्ग- 30/ श्लोक - 17, 18, 19.

अहं ह्यति तनुश्चैव वानरश्च विशेषतः ।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् ।। - 17

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ।। - 18

अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत् ।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ।। - 19

पर एक पुष्पमय लम्बे पत्तों से लदे हुए शिंशपा वृक्ष पर चढ़कर दुःखपीड़ित में पड़ी हुई सीता को देखने का प्रयत्न किया। यह ~~कार्य~~ बात आदि कवि महर्षि वाल्मीकि कहते हैं।[5]

कवि श्रेष्ठ प्रताप को भी इस बात का उल्लेख किये बिना मन को संतोष नहीं होता। वे लिखते हैं कि हनुमान जी ने मन में विचार किया और शिंशपा वृक्ष की चोटी पर चढ़कर सीता को देखा -

मन मानस निज करत विचारा ।
बहु विधिबल मानस बहु आरा ।।
शिंशपा वृक्ष लखी वर सीता ।
पिंगल केश छटा पर बैठा ।।

<u>मुद्रिका का प्रसंग -</u>

हनुमान द्वारा सीता की खोज और सीता के दर्शन के प्रसंग में अपनी पहचान के निमित्त राम की मुद्रिका देने की कथा आती है। वहाँ यह कहा गया है कि राम ने अपनी अंगूठी जब हनुमान सीतान्वेषण के लिए जा रहे थे तब उनको पहचान में बुलाकर दिये थे। यह अंगूठी देखकर सीता पहचान जायेंगी कि हनुमान वास्तव में राम के पास से आए हुए हैं। अंगूठी का यह प्रसंग इतना लोकप्रिय हुआ कि प्रत्येक राम काव्य का लेखक इस प्रसंग को उद्धृत करता है। वाल्मीकि रामायण में भी अंगूठी के प्रसंग के सर्ग को अलग से[6] रखा है। और यह स्पष्ट जाहिर है कि यह प्रसंग बाद में प्रक्षिप्त किया गया क्योंकि यदि वास्तव

5- सुपुष्पिताग्रान् रुचिरांस्तरुणांकुर पल्लवान् ।
तामारुह्य महावेगः शिंशपां पर्णसंवृताम् ।। - 41
इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं राम दर्शन लालसाम् ।
इतश्चेतश्च दुःखार्तां सम्पतन्तीं यदृच्छया ।। - 42
- वा. रा. सुन्दर काण्ड, सर्ग 14/41,42.

6- वाल्मीकि रामायण, सुन्दर काण्ड, सर्ग -

अष्टम् अध्याय

अष्टम् अध्याय

युद्ध- पर्व के मूल कथा प्रसंग -

इस महाप्रबन्ध का युद्ध- पर्व नामक खण्ड जो वाल्मीकि रामायण का लंका काण्ड है कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ऐसा लगता है कि कवि रुद्र प्रताप जब सुन्दर काण्ड तक की कथा लिख चुके तब उन्हें कुछ विश्राम का अनुभव हुआ और उन्हें ऐसा लगा कि अब मैं राम की कथा का सम्पूर्ण प्रबन्ध पूरा कर लूंगा। पीछे के काण्डों में विशेषकर किष्किंधा काण्ड में उन्होंने प्रबन्ध का बड़ा विस्तार किया है। वे राम- भक्त है और उनको इस बात में श्रद्धा थी कि राम की कृपा से ही यह प्रबन्ध पूर्ण होगा। वे गुरु एवं गुरु पत्नी के परम आराधक थे[1] इस विश्वास ने अब इनको अवकाश दिया कि वे अब राम- कथा का अन्तिम भाग लिखने जा रहे हैं। अतः इसमें उन्होंने नए कथा - संदर्भों के कई प्रबन्ध सम्मिलित किये हैं और जो प्रबन्ध वाल्मीकि रामायण में है उनमें भी इन्होंने नवीनता लाने का प्रयत्न किया है। कुछ संदर्भ जैसे नरान्तक - देवान्तक की कथा आदि कुछ अन्य पुराणों से ली है। इन्होंने फिर भी वाल्मीकि के कथानक- मार्ग का परित्याग नहीं किया है। जैसे लक्ष्मण को चैतन्य करने के लिए जब हनुमान जी हिमालय से औषधि लेकर आते हैं तब वे अयोध्या के ऊपर से नहीं आते जैसा कि उनके पूर्व गोस्वामी तुलसीदास लिख चुके है[2]। किन्तु वाल्मीकि रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने ऐसा नहीं कहा है[3]। राम जब लंका से अयोध्या आते हैं मार्ग में जो सुन्दर स्थानों एवम् प्रकृति का वर्णन मिलता है ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने महाकवि कालिदास के रघुवंश महाकाव्य से अनुकृत किया है।

1- गुरु रामचन्द्र, लंका पर्व

2- रामचरितमानस, लंका काण्ड, दोहा- 58.

गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ।।

3- वाल्मीकि रामायण , लंका काण्ड

कवि ने इसमें तीन बिल्कुल नए संदर्भ जोड़े हैं -

1- कवि की अपनी विनय एवं अपने कुल पर राम की कृपा का वर्णन ।

2- अभिषेक विधान में कवि रुद्र प्रताप द्वारा अपने समकालीन इतिहास का वर्णन ।

3- कवि का अपने अनुसार राजा के कर्त्तव्य एवं सदाचार का वर्णन ।

कवि द्वारा इस युद्ध पर्व में सन्दर्भों के मूल विस्तार का क्रमशः अब विवेचन किया जा रहा है -

1- अंगद का दूतत्व -

लंका काण्ड में राम- रावण युद्ध के आरम्भ होने से पहले भगवान राम की ओर से शान्ति के लिए अंगद को दूत बनाकर भेजे जाने की कथा बहुत महत्व रखती है और इसका प्रचार भी बहुत है। पिछले लेखों के कवियों ने प्रायः इस प्रसंग को विस्तार से वर्णन किया है। केशवदास की राम- चन्द्रिका में रावण- अंगद सम्वाद उत्तर प्रति उत्तर के रूप में पूरे विस्तार से ग्रन्थ के एक पूरे प्रकाश में निबद्ध है। वाल्मीकि रामायण में यह प्रसंग औप- चारिक एवं अत्यन्त लघु है। जब राम की वानरी सेना ने लंका के दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया और प्रत्येक दिशा में वानर सेनापतियों ने अपनी- अपनी व्यूह रचना की तब राम के मन में यह आया कि युद्ध होने के पहले मैं अपना एक संदेश रावण को भेजूँ कि मैं तुझे तेरे अपराधों का दण्ड देने जा रहा हूँ और यदि तू चाहता है कि तुझे तेरे अपराधों का दण्ड न मिले या अपराध को स्वी- कार करता है तो इसके सम्बन्ध में युद्ध के पहले जो समय बचा रह गया है उसे तू सोच ले। भगवान राम ने इस सम्बन्ध में अपने विभीषण आदि मंत्रियों से सलाह ली और बालि- पुत्र अंगद को दूत बनाकर अपना राज- संदेश भेजा । उनका राज सन्देश कुल 13 अनुष्टुप छन्दों में है। अंगद को जो कुछ वही वाक्य कहना था, कोई बात अपनी ओर से नहीं कहनी थी। अंगद ने यही किया। अन्त में अंगद ने राम के विशिष्ट संदेश- वाक्य को फिर से दोहराया -

---

4- वाल्मीकि रामायण, युद्ध काण्ड, सर्ग- 41/ छन्द 60- 72.

का बपुरा यह सागर बाँधे । कीन्ह जाल बसि बानर आँधे ॥
उलट राम यह कीन्ह असादा। तोरेन्हि लंक केरि मर्यादा ॥
कीन्ह परिश्रम बहु रघुराई । भए त्रिकूट सदन तब आई ॥
कबहु जाय तुम्ह रामहिं कहौ। जिमि प्रन करहिं लागि बैदेही ॥
सारदूल गहि जीव छड़ाई । सो लंकहि बायस कपि पाई ॥
तबहिं तीन देखउँ पुर राजू । भेंटि देउँ तब भरत समाजू ॥
उतरि महेन्द्राचरि पगु डारी। देखउँ तीन सरीखर बारी ॥

रामहिं अवधहिं चित करि भरतहिं लागु भारि ।
आगम रह जिन नीति कहि बानर त्यागन बारि ॥[11]

अंगद को रावण की यह बात अपमानजनक लगी। उन्होंने इसका प्रतिवाद किया और सारयुक्त बात कही कि यह लंका तुम्हारी नहीं रह पायेगी। त्रिकूट पर्वत को उठाकर वानर समुद्र में डाल देंगे। अच्छा यही होगा कि तुम सीता को देकर अपनी रक्षा करो -

देहु सियहिं अउ जीवन पावहु । कर मिलि करतल उर फल पावहु ॥
भानु विशाल भयानक बाहु । मध्य महेन्द्र सहित कपि याहु ॥
यह त्रिकूट गिरि लैहिं उठाई । बाहु देहिं सागर महँ नाई ॥
जनक सुता आपेउँ लेइ जबहीं । कीन्ह त्रिकूट विशाल पति अबहीं ॥[12]

इसके बाद अंगद ने रावण की सभा में अपना पराक्रम प्रकट किया। कड़ी टेक मांगा की। जिन वीर राक्षसों ने पकड़ना चाहा उन्हें उठाकर पटक दिया-

कथा हेतु कारन अघहारी । जय विजयी रावन सुत भारी ॥
तिन्हहि उठाय बाहु गहि लीन्हा। देखत सबहिं पटकि महि दीन्हा ॥[13]

यहाँ पर [illegible] ने वाल्मीकि रामायण का अनुसरण किया है -

11- पृ० रामकाव्य, पुर पद, विश्राम- 10, दोहा- 144.
12- वही, विश्राम-10, दोहा- 145.
13- वही, विश्राम-10, दोहा- 146.

कपि प्रनाम रघुबर तिलक छोड़ उभय कर जोरि ।
रावन अंध क्रियावतल मानु न मानहु तोरि[16] ।।

अंगद के दूतत्व का यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा बिल्कुल मूल संदर्भ तो है ही कथाक्रम में किसी रामकथाओं से भी सर्वथा भिन्न है। कहीं-कहीं कवि की यह कल्पना इतनी ही नहीं उपहासास्पद भी प्रतीत होती है और कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है कि सामान्य कोटि के बैठे लोग आपस में नोक-झोंक कर रहे हों। लेकिन इतना होने पर भी इसे हम कोरा वाग्-विलास नहीं कहेंगे। यह कवि की, जो राजा है और कैथल की गद्दी पर बैठा हुआ है, राम भक्ति की कल्पना है और राम भक्ति की प्रेरणा में ही इसके ये सारे उद्गार हैं इसलिए इसे इस दृष्टि से देखना चाहिए।

<u>लक्ष्मण को शक्ति लगना एवम् हिमालय की संजीवनी बूटी -</u>

राम-कथा में राम-रावण युद्ध के प्रसंग में यह कथा अति प्रसिद्ध, अत्यंत मार्मिक एवम् लोकप्रिय है कि मेघनाद ने लक्ष्मण को ब्रह्मशक्ति से मूर्छित कर दिया और लक्ष्मण चेतनाविहीन हो गये। हनुमान जी हिमालय से विशल्य करनी संजीवनी औषधि ले आये तब वे जीवित हो सके। यह बहुत ही मार्मिक, करुणापूर्ण एवम् चमत्कृत करने वाला प्रसंग है। मूल रूप में वाल्मीकि रामायण में यह प्रसंग इस प्रकार था। बाद के कवियों ने इसमें अनेक कल्पनाएं की हैं। कल्पना का अधिकतम रूप यह रहा कि हनुमान जब संजीवनी औषधि लेकर हिमालय से चले तो अयोध्या के ऊपर से उड़ते हुए जा रहे थे। नन्दिग्राम में बैठे हुए भरत ने जब आकाश में उनको देखा तो घबड़ा उठे और समझा कि यह कोई असुर पहाड़ लिये जा रहा है। उन्होंने बाण चला दिया और हनुमान जी पर्वत सहित नीचे आ गये। उनके राम राम कहने पर भरत व्याकुल हो गये और फिर राम-रावण युद्ध का भरत को पूरा ज्ञान हुआ। परिचय के पश्चात् हनुमान औषधि लेकर लंका पहुंचे और लक्ष्मण को

16- गु० रामायन, युद्ध पर्व, विश्राम- 10, दोहा- 148.

चैतन्य किया। गोस्वामी तुलसीदास ने भी इस कथा को लिया है और उन्होंने बड़ा चमत्कारी वर्णन किया है। कवितावली में उन्होंने हनुमान जी के वेगपूर्वक जाने का बड़ा सुन्दर चित्र खींचा है। वह सवैया छन्द इस प्रकार है -

लीन्हों उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहि काल, बिलंबु न लायो।
मारुत नंदन मारुत को, मन को, खगराज को बेगु लजायो ॥
तीखी तुरा तुलसी कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो ।
मानों प्रतच्छ परब्बत की नभ, लीक लसी कपि यों, धुकि धायो ॥

- कवितावली, लंकाकाण्ड, /54.

इसी के साथ बीच में कालनेमि द्वारा सरोवर और ग्राह की सृष्टि कर हनुमान को छलने का प्रसंग आता है जो उसने रावण की आज्ञा से किया था। हनुमान उसके कपट को जान गये और उसे बाण से मार दिया। बड़े मजे की बात यह है कि ये कल्पनाएँ इतनी लोकप्रिय हो गईं कि इन्हीं के आधार पर और नई- नई कल्पनाएँ कर ली गईं। जैसे - उत्तर प्रदेश के जनपद जौनपुर में मछली- शहर नाम का स्थान है जहाँ हनुमान जी की मूर्ति है और जो काल-नेमि का स्थान बताया जाता है जहाँ उसने हनुमान जी को छलने का प्रयत्न किया था।

किन्तु यह सब कल्पनाएँ वाल्मीकि रामायण की मूल कथा को पीछे छोड़ कर की गई हैं। वाल्मीकि रामायण की मूल कथा में सिर्फ इतना ही है कि उस दिन मेघनाद रथ पर चढ़के और रथ में चढ़ने का समय उसे युद्ध में कहा था।[13] उसने भयानक संहार किया और ब्रह्मा जी द्वारा दी गई शक्ति का प्रयोग राम की सेना पर किया। एक ही साथ बाणों की तुमुल घनघोर वर्षा हुई। सबके अंग बाणों से छिद गये। राम लक्ष्मण सहित सारी सेना बाणों से घायल होकर अचेत पड़ी रह गई। केवल विभीषण और हनुमान जी बचे रहे थे। विभीषण हनुमान जी को लेकर एक- एक वीरों को खोजने चले तो उन्होंने

13- वाल्मीकि रामायण, लंकाकाण्ड, सर्ग- 73, श्लोक- 1925.

युद्धभूमि से ही सारी सेना जीवित हो उठेगी। कवि रुद्र प्रताप ने इसको भी छोड़ दिया है। केवल लक्ष्मण को जीवित करने की बात कही है और हनुमान भगवान राम की आज्ञा से संजीवनी बूटी लेने जाते हैं तथा हनुमान ही युद्ध-भूमि से लक्ष्मण को उठाकर ले आते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने भी ऐसा ही वर्णन किया है। अनुमान यह है कि इस प्रसंग में दोनों कवियों का स्रोत एक ही है। आगे कालनेमि की कथा भी दोनों कवियों ने एक ही स्रोत से ली होगी लेकिन कालनेमि के आश्रम का वर्णन करने में कवि रुद्र प्रताप ने अनावश्यक विस्तार किया है।

कालनेमि आश्रम का वर्णन कवि कुछ आकर्षक ढंग से भी करता है। कालनेमि आश्रम की संरचना हिमालय पर्वत पर ही करता है। कवि रुद्र प्रताप ने वहाँ पर गुरुकुल की स्थापना भी कर दी है। बटु समुदाय वेद और राम की महिमा का गान कर रहे हैं। सरोवर, नाना प्रकार के वृक्ष, फूल, फल, पक्षी आदि मन को मोह लेते हैं। हनुमान जी भी उस फुलवारी, मनोहर रूप को देखकर मोहित हो जाते हैं।

यहाँ यह भी विचार करने योग्य है कि रावण को भी हनुमान के हिमालय के द्रोण गिरि पर जाने की खबर मालूम हो जाती है और वह उनके मार्ग में विघ्न पैदा करने के लिए कालनेमि के पास जाता है। पहले तो कालनेमि ने रावण को समझाया और उसने नीति सिद्धान्त की लम्बी बातें कही हैं। उसने रावण को परामर्श दिया कि विरोध छोड़कर जनक कुमारी को राम को दे दो। जो बलवान होते हैं वह मान को पीछे कर अपमान को आगे ले लेते हैं, कार्य जैसे पूरा हो वह उपाय करना चाहिए। कहता है कार्य सिद्ध करने के लिए आर्य भाव और ताव को छोड़ देना चाहिए। कार्य सिद्ध हो जाने पर ताव छोड़ने का फल अपने आप प्रकट हो जायेगा। कवि रुद्र प्रताप का यह कौशल प्रशंसा करने

योग्य है। मेरी जानकारी के अनुसार ये कवि के निजी भाव हैं -

काम करहिं बालमी जन आरत आय विहाय ।
ताय मनअब होत सुधि काटब निज बल पाय[20] ॥

आगे भी बालमीकि कहता है कि मेरी समझ में कहीं राक्षस- कुल का संहार न हो जाय। इसलिए भी आपको मेरी यह सलाह माननी चाहिए। वह कहता है कि सीता की रक्षा करना इस समय पहला कर्तव्य है। इसमें आपका अपना अपमान या अन्य कोई बात नहीं सोचनी चाहिए। आप तो परम बुद्धिमान् [विद्वान भी] हैं मैं क्या कहूं। ऐसा लगता है कि कवि रघुनाथ राम-भक्ति की भावना में स्वयं ही बालमीकि के मुख से जानकी को लौटाने की बात बार-बार कहलाते हैं जो उनकी राम- भक्ति का प्रतीक है। जो यह कहा जाता है कि भावुक कवि जहाँ तहाँ कथा- प्रबन्ध के पात्र के रूप में अपने को ही जाहिर कर देता है वही बात यहाँ देखी जा रही है -

मोर कहिय अर कंटक जाई । ताहि बाल्मिकिहिं भाव दिखाई ॥
करहिं भूरि जन विधि को नाशु। त्रिदि जानि नहिं होत विनाशु॥
जोग्यहिं दीप न लीजन पाऊ । राखे जाता त्रिदि पताऊ ॥

बहु जन दिये अमद कुल सम जौ पलटे पाय ।
तबको यह देव बाल्मिकिहि सीते सौ बनाय ॥
राम सुराधिपतन कुल सब रावेन सुरारि ।
जाते कहनिहु भाँति नहिं सोचहि सिया सुम्हारि ॥
जाते तजहिं अपराधिय मरत न कीजे पाप ।
मोय अतै दीजे सिया कहिय सौ को पाप[21] ॥

20- श्री रामचन्द्र, पूर्व पद, विश्राम- 28, दोहा- 413.
21- वही, विश्राम- 28, दोहा- 414 से 416.

यहाँ पर कवि ने कालनेमि की भक्ति के साथ अपनी भक्ति का तादा-त्म्य कर दिया है। इसलिए आगे भी वह इसी के अनुकूल भव्य कल्पनायें प्रस्तुत करने लगता है जो वस्तुत: उसका अपना कल्पना संसार है। इस प्रसंग में उसे इतने विस्तार की जरूरत नहीं थी लेकिन कविगण किस प्रकार अपने इष्ट भाव की भूमि पाकर मुख्य कथा- मार्ग से अलग हटकर कुछ देर विश्राम करने लगते हैं, उसका यह भव्य एवम् सटीक उदाहरण है। ऐसी निजी भाव- भूमि की कल्पनायें हिन्दी के उपन्यासकारों में बहुत पाई जाती हैं जिसको उपन्यास का दूषण कहा गया है और ऐसे उपन्यासकारों को अनन्य लेखकत्व का तृतीय श्रेणी का कथाकार माना जाता है।[22] लेकिन यहाँ पर कवि रुद्र प्रताप ने कालनेमि के प्रसंग में अपनी राम- भक्ति- भावना का जो सन्निवेश किया है वह कुछ कारणों से इस कथा- प्रसंग का दूषण नहीं अपितु भूषण बन गया है। आवश्यकता इस बात की थी कि कालनेमि की राम भक्ति का उत्कर्ष दिखाया जाय। उसकी राम-भक्ति के चरम उत्कर्ष का अर्थ यह है कि राक्षस जाति का भी अपना ज्ञान और अपनी सभ्यता थी। परिस्थितियों को पहचानने वाले विद्वान्, बुद्धिमान् लोग उनमें भी थे। लेकिन रावण अपने दुरभिमान के समक्ष किसी उनकी सलाह को भी नहीं मानता, इस बात का भी यह एक अच्छा उदाहरण है।

कवि रुद्र प्रताप ने हिमालय पर कालनेमि के आश्रम में जो गुरुकुल का वर्णन किया है वह कवि की अपनी स्वाभाविक मनोवृत्ति एवम् कल्पना का मूर्त रूप है। क्योंकि बालकाण्ड में कवि ने अपने गुरु एवम् गुरु पत्नी का आख्यान किया है। पाँच वर्ष की आयु में ही गुरु ने इनका उपनयन कर विद्याध्ययन कराया था। शायद कवि के मन में रहा हो कि ऐसे गुरुकुल की स्थापना मैं करूँगा और वह व्यावहारिक रूप से प्रत्यक्ष नहीं कर सका तो यहाँ कल्पनाओं से कर दिया-

---

22- हिन्दी कथा साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : डॉ० देवराज उपाध्याय, पृ०-

इसके आगे कवि कालनेमि का परिचयात्मक वर्णन करते हुए कालनेमि की निधन का गुप्ति बताता है। वह शरीर में भस्म लगाए है मानों त्रिपुरारि शंकर हों। इन सारे वर्णनों के विस्तार में जाकर जैसे कवि अपनी ही रामभक्ति का परिचय दे रहा है और भाव लोक में भगवान राम के परम भक्त हनुमान से मिल रहा है और अपने को कालनेमि के रूप में उपस्थित कर रहा है। अगर ऐसा न होता तो साधारण सी बात कहकर उसे आगे बढ़ना चाहिए था और कालनेमि के दिव्य रूप का वर्णन नहीं करना चाहिए। कवि ने उसके दिव्य रूप का वर्णन किया है जो उसके अपने दिव्य रूप के वर्णन करने की सार्थकता है -

भ्रकुटिहिं कुटी कुटी जनु छाया । हरत मदन मधुकर संतापा ।।
भाल विशाल चन्द्र जनु साँठी । भाल तिलक विशाल रुचि गाँठी।।
भाल मनोहर पंकज लोचन । नील ब्याल शंकर मद मोचन ।।
जाराचादि रेनु तनु धारी । भस्म भाल जनु देव पुरारी ।।

बल्कल अजिन सुधीर अरु नारायन मुनि धारि ।
शोभा आगुहि निरखि जब पवन कुमार निहारि।।[25]

कथा का अन्त यह हुआ कि अन्त में जल पीने के लिए जब हनुमान जी सरोवर में गये तो मकरी हनुमान को खाने के लिए बढ़ी तब हनुमान ने उसे मार डाला। वह अप्सरा बनकर प्रकट हुई और हनुमान को उसका रहस्य बताया। हनुमान जी ने फिर कालनेमि को मारा और जिस प्रकार राम-भक्त वर्णन करते हैं, हनुमान द्वारा मुष्टिका मारे जाने पर कालनेमि राम- सीता का नाम लेकर अपना प्राण छोड़ा और दिव्य गति को प्राप्त की -

जपति राम कहि सीय कहि लखि तकल हनुमान ।
ता तें पायउ दिव्य गति गनेउ दिव्य विमान।।[26]

25- कृ० रामायण, युद्ध पद, विश्राम- 23, दोहा- 421।
26- वही, दोहा- 424।

यहाँ राम लक्ष्मण को लेकर दुखी हैं और सोचते हैं कि हनुमान अभी संजीवनी लेकर नहीं आए, क्या होगा? यहाँ पर राम के शोक का कोई विस्तार कवि ने नहीं किया है, इसके दो कारण हो सकते हैं -

1- कवि की अक्षमता :- राम लक्ष्मण को मूर्छित देखकर विलाप करते हैं, शोक विह्वल हैं। उनके शोक की अभिव्यक्ति और इस मर्मस्पर्शी प्रसंग को प्रस्तुत करने की क्षमता कवि होने का प्रमाण है। कवि रुद्र प्रताप ने ऐसा नहीं किया। हो सकता है राम के शोक से उनका तादात्म्य नहीं हो सका ।

2- कवि रुद्र प्रताप वाल्मीकि रामायण के कथा- प्रसंगों का अनुगमन करते हुए सब कुछ लिख रहे हैं। वाल्मीकि रामायण में क्योंकि राम- लक्ष्मण दोनों मूर्छित हो गये थे इसलिए राम विलाप का कोई प्रसंग नहीं आया। अतः कवि रुद्र प्रताप भी इस प्रसंग को छोड़ जाते हैं ।

जब राम चिन्ता मग्न थे उसी समय आकाश में एक तीव्र प्रकाश दिखाई पड़ा और रुद्र तेज हनुमान पर्वत के साथ राम-दल में आ गये -

एहि विधि सोचत राम व्योम गोल कपि लखि परेउ ।
कूदेउ दल मध आन गिरि युत मारुत रुद्र मद[27] ।।

यहाँ पर कवि ने रुद्र तेज के अर्थ में रुद्र मद शब्द का प्रयोग किया है। "कूदेउ" क्रिया का प्रयोग प्रसंग के अनुकूल ठीक नहीं है। "आयउ" का प्रयोग ठीक होता। "व्योम गोल कपि लखि परेउ" का प्रयोग सटीक बन पड़ा है। रुद्र प्रताप कथा को पद बद्ध कर रहे हैं। कवित्व की शक्ति उनकी अपनी शैली नहीं है, यह बात उनके इन दोहों से प्रकट होती है। इसी प्रसंग का गोस्वामी तुलसीदास का लंका काण्ड का दोहा भाव- गर्भित एवं कवित्वमय है जो उल्लेख- नीय है -

---

27- "रुद्र रामायण", युद्ध पर्व, विश्राम- 23, दो०- 99.

अर्थात् त्रिशिरा ने कहा कि आप युद्ध में न जायँ, मैं अकेले ही आपके शत्रुओं को वैसे ही नष्ट कर दूँगा जैसे गरुड़ सर्पों को करता है तथा जैसे इन्द्र ने शम्बरासुर तथा विष्णु ने नरकासुर को मारा था वैसे ही आज मैं युद्ध में राम को निपातित कर दूँगा ।

उक्त कथन में त्रिशिरा शम्बर असुर और नरक असुर से अपनी भिन्न जाति राक्षस उद्घोषित कर रहा है। उसके कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे उन लोगों ने असुरों को मारा वैसे ही हम उन लोगों को मारेंगे ।

आगे के सर्गों में महर्षि वाल्मीकि ने इन चारों सेनानायकों को राम-लक्ष्मण के द्वारा वध करवाया है। कवि रुद्र प्रताप ने यहाँ वाल्मीकि के अनुसरण में प्रसंगों का पौर्वापर्य बदल दिया है। वाल्मीकि रामायण में यह प्रसंग युद्ध के पहले चरण में है। द्वितीय चरण में इन्द्रजित मेघनाद राम- लक्ष्मण को ब्रह्मास्त्र से मूर्छित करता है। कवि रुद्र प्रताप प्रथम शक्ति से राम- लक्ष्मण की मूर्छा का प्रसंग युद्ध के प्रथम चरण में दिखाते हैं और दूसरे चरण में कुम्भकर्ण, देवान्तक, नरान्तक, अतिकाय, त्रिशिरा आदि के युद्ध का प्रसंग । वाल्मीकि रामायण-युद्ध काण्ड के 68 वें सर्ग में रावण कुम्भकर्ण के लिए विलाप करता है। इस विलाप में कई अत्यन्त स्वाभाविक उद्गार हैं। जैसे वह कहता है कि जब तुम नहीं रहे तब मैं सीता को लेकर क्या करूँगा या यह राज्य लेकर क्या करूँगा। मैं जीना नहीं चाहता -

राज्येन नास्ति मे कार्यं किं करिष्यामि सीतया ।
कुम्भकर्णविहीनस्य जीविते नास्ति मे मतिः[30] ।।

आगे पुनः उसे विभीषण की बातें याद आ जाती हैं और उसे न मानने का उसे पछतावा होता है और इस विनाश को देखकर उस बात को न मानने की लज्जा होती है -

---

30- वा० रा० , युद्धकाण्ड, सर्ग- 68, श्लोक- 17.

इसमें जो उक्तियाँ केवल कहने के लिए कवि ने कही हैं उनमें इन चौपा-यों को लिया जा सकता है -

एक एक मोहिं त्यागि अभागे। कुम्भ भये राक्षस सर आगे।।
फिरि-फिरि करेसि घोर संग्रामा। लै कुँवर कृपाल पद रामा[34]।।

इसके अतिरिक्त तत्कालीन राम- साहित्य से प्रभावित होकर उक्तियों की उद्भावना भी कवि ने की है। विशेषकर उसके ऊपर "रामचरितमानस" का प्रभाव है; वह कहता है -

होहिं विप्रगन दुखित आजू।
को भुगिहि सब यज्ञ समाजू[35]।।

अर्थात् आज तुम्हारे मर जाने पर विप्रगण दुखित हो रहे हैं क्योंकि यज्ञीय द्रव्य के सहित उन्हें भक्षण करने वाला अब कोई नहीं रहा। यह उक्ति मुस्लिम शासन के अत्याचार से पीड़ित राम भक्त कवियों की है। वाल्मीकि रामायण में कहीं भी ऋषियों एवम् ब्राह्मणों को राक्षसों ने खा डाला हो ऐसा चित्र नहीं है।

<u>नरान्तक, महान्तक, अतिकाय और त्रिशिरा का युद्ध -</u>

इस युद्ध के वर्णन में कवि वाल्मीकि से बहुत भिन्न नहीं है वरन् उसने अपेक्षाकृत संक्षेप में ही इस प्रसंग को समाप्त किया है, वाल्मीकि के समान विस्तार नहीं किया है। कवि ने विश्राम 34, 35, 36 और 37 में क्रमशः नरान्तक, देवान्तक, त्रिशिरा और महोदर के युद्ध का वर्णन किया है। फिर उसने विश्राम 39 में अतिकाय के युद्ध का वर्णन किया है। इन वर्णनों में वाल्मीकि की स्वाभाविक और ओजस्वी शैली कवि की वाणी में नहीं आ पायी है। यद्यपि ऐसे उपमानों की कल्पना कर वाल्मीकि ने युद्ध का चित्र खींचा

34- कृ॰ रामायण, युद्ध पर्व, विश्राम- 35, दोहा- 498.
35- तद्वत्, दोहा- 499.

<u>रावण के साथ युद्ध का प्रसंग -</u>

कवि ने युद्ध प्रसंग में राम- रावण- युद्ध का वर्णन वाल्मीकि रामायण के अनुसार बहुत विस्तार से किया है। राम- कथा साहित्य के अध्ययन करने वाले विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि वाल्मीकि रामायण में समय-समय पर प्रसंग प्रक्षिप्त होते रहे हैं।[30] लेकिन इतने पर भी वाल्मीकि रामायण में कवि का मूल पाठ यथावत् सुरक्षित है। उसमें कोई हेर- फेर प्रक्षेपकार कवियों ने नहीं किया है। इसके उदाहरण में हम उस प्रसंग को ले सकते हैं जब राम ने रावण को विजय कर लिया और उन्होंने अयोध्या की ओर प्रस्थान किया तो मूल पाठ में जो वर्तमान वाल्मीकि रामायण की 124 वें सर्ग में है वह यह है कि-

> पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पंचम्यां लक्ष्मणाग्रजः ।
> भरद्वाजाश्रमम् प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम्[31] ।।

अर्थात् चैत्र शुक्ल पंचमी के दिन श्रीराम भरद्वाज आश्रम पहुँचे। इस सर्ग में कहीं भी पुष्पक विमान का नाम नहीं लिया गया है। लेकिन इसके पूर्व के 123 वें सर्ग में लिखा गया है कि सभी वानर राक्षस तथा विभीषण सहित पुष्पक विमान से अयोध्या पहुँच गये और अमरावती के समान शोभित उस अयोध्या को देखने लगे -

> ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसाः स विभीषणः ।
> उत्पत्योत्पत्य ददृशुस्तां पुरीं ददृशुस्तदा ।।
> ततस्तु तां पाण्डुरहर्म्यमालिनीम् ।
> विशालकक्ष्यां गजवाजिभिर्वृताम् ।।
> पुरीमयोध्यां प्लवगाः स राक्षसाः ।
> पुरीम् महेन्द्रस्य यथामरावतीम्[32] ।।

30- संस्कृत साहित्य का इतिहास : डॉ० बलदेव उपाध्याय, डॉ० फादर कामिल बुल्के राम कथा का विकास - डॉ० बीच ।
31- वाल्मीकि रामायण [गीताप्रेस गोरखपुर] युद्ध काण्ड, सर्ग-124, श्लोक-1.
32- वाल्मीकि रामायण, सर्ग- 123, श्लोक- 56, 57 [गीता प्रेस]

यह विवरण सर्ग 123 और सर्ग 124 के प्रसंगों में विपरीत स्थिति पैदा करता है और जब हम 124 वें सर्ग के पाठ को आदि कवि के मूल पाठ को स्वीकार करेंगे तो उसका अर्थ होगा कि चैत्र शुक्ल पंचमी के पूर्व रावण का वध किया जा चुका था। अर्थात् चैत्र कृष्ण चतुर्दशी को रावण का वध हुआ और उसके बाद राम ने अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। तभी यह सिद्ध होता है कि चैत्र शुक्ल पंचमी को राम भरद्वाज आश्रम पहुँचे।

हमारे कवि रुद्र प्रताप ने और सब बातों में तो महर्षि वाल्मीकि का अनुसरण किया लेकिन वे युद्ध की सम्पूर्ण अवधि 87 दिन ही बताते हैं और युद्ध की समाप्ति चैत्र शुक्ल चतुर्दशी का प्रातःकाल कहते हैं। यहाँ वे पूर्ण रूप से वाल्मीकि के विरुद्ध चले गये हैं। इस प्रकार इसे मूल कथा प्रबन्ध तो नहीं कहा जा सकता है लेकिन कथा प्रबन्ध का नया आधार या नई भूमि इसे अवश्य कहेंगे। महर्षि वाल्मीकि ने राम- रावण युद्ध का वर्णन केवल एक या डेढ़ दिन का किया है, इन्होंने 16 दिन का किया है। कवि रुद्र प्रताप ने युद्ध पद के 16वें विश्राम के अन्त में रावण के मारे जाने के बाद युद्ध के इन दिनों का लेखा-जोखा किया है -

सत्तासी वासर समर कसमर आतुर मान ।
माघ द्वितीय द्विनिशा चपल अमावस पुग विराम ।।
एतो दिन संग्राम कीन्हव आतुर वानरन ।
एक पक्ष पर याम विक्रिम रावण राम कवि ।।
सोलह दिवस विशाल महा महा रन भयउ घोर।
सोउ राम इक भाग कहहिं रावण भय करी[53] ।।

<u>राम- रावण युद्ध में नई कल्पनायें -</u>

कवि रुद्र प्रताप ने वाल्मीकि का अनुसरण करते हुए भी अपनी कवित्व- कल्पना और शक्ति के अनुसार युद्ध के स्वभाव और दिन अंकित किये हैं। इन कल्पनाओं में स्पष्ट रूप से इनके ऊपर भागवत की यानि भागवत् महापुराण के

53- तुलसीमन्वीरातन रामायण, युद्ध पद, विश्राम- 57, दोहा- 313
तथा सोरठा 141, 142.

युद्ध काण्ड में ऋषि अगस्त्य के द्वारा राम को आदित्य हृदय के जप[55] की दीक्षा का प्रसंग आया है जिससे वे रावण को विजय करते हैं। अनेक विद्वानों ने इसे प्रक्षिप्त प्रसंग स्वीकार किया है। कवि रुद्र प्रताप ने अपने "राम- खण्ड" में इस प्रसंग को नहीं लिया है। अब हमारा यह कवि जिन प्रसंगों को आदि कवि की शरण लेकर भी अपनी कल्पना से दूसरा रूप देता है उनका हम विवेचन करते हैं जिससे उनके ऊपर शैव- वाद और भक्ति सम्प्रदाय का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

पुत्रों के बाद दु:खी रावण जब युद्धभूमि की ओर बढ़ता है तो वह अपने सारथी को युद्धभूमि की ओर रथ बढ़ाने का आदेश देता है और कहता है कि सारथि ! मेरे अमात्यों को मारकर मेरे नगर को घेर रखा है मैं उस व दु:ख से दुखी हूँ । आज मैं राम- लक्ष्मण का वध करके ही इस दुख को दूर करूँगा। मैं युद्ध भूमि में आज राम रूपी वृक्ष को नष्ट कर दूँगा जिससे मुझे सीता रूपी पुष्प प्राप्त होगा। सुग्रीव, जाम्बवान्, कुमुद, द्विविद, मैन्द, अंगद, गन्ध मादन, हनुमान् सुषेण आदिक सभी वानर सेनानायक जिसकी शाखा पर शाखा हैं उस वृक्ष के नष्ट होने से सभी स्वतः नष्ट हो जायेंगे ।[56]

कवि रुद्र प्रताप का रावण भी युद्धभूमि पर पहुँच कर राम से कहता है। वह अपने बल पराक्रम का बखान न कर राम की कुटिलता का ब्यौरा देता है। राम की कुटिलता कहे जाने का यहाँ अर्थ यह है कि राम अर्थात् विष्णु ने अपने अवतारों में सदा छल छद्म किये हैं तथा विजय अर्जित किए हैं। लेकिन आज मैं उस सारे पाखण्ड को नष्ट कर दूँगा। कवि की यह कल्पना शैव भावों

55- वाल्मीकि रामायण, युद्ध काण्ड, सर्ग - श्लोक -

56- निहतानाममात्यानां रुद्धस्य नगरस्य च ।
दु:खमेषोऽपनेष्यामि हत्वा तौ राम लक्ष्मणौ ।।

राम वृक्षं रणे हन्मि सीता पुष्प फल प्रदम् ।
प्रशाखा यस्य सुग्रीवो जाम्बवान् कुमुदो नलः ।।
द्विविदश्चैव मैन्दश्च अंगदो गन्ध मादनः ।
हनुमांश्च सुषेणश्च सर्वे च हरि यूथपाः ।।
- वाल्मीकि रामायण, युद्ध काण्ड, सर्ग- 99, श्लोक 3 से 5

मंदोदरि सम करहिं बिलापा । कहति सखा सब सुनि संतापा ।।
देखत फिरउ मेघ रथ जाती । मिलत न सो अतिकाय भिरानी ।।
तुम्ह न जानहु सुरपति अब राजे । सब बानर जोध तन नहिं राजे ।।
कबहिं न करहु असुर कुठारा । देव स्वबस तजि परहिं निवारा ।।
नहिं कुंठ कर कंठ बनाई । सो अयोध्या सिसु सबा बनाई ।।

सुनि रावन की निंदा सब रमा रमन रघुराय ।
बिहँसि कहेउ लखन्ह त्रिदि भानु बीच फिराय[57] ।।

यह प्रसंग जब रावण अपने मुख से कहता है तो स्पष्ट हो जाता है कि रावण के मुख में कवि स्वयं प्रभाव बैठे हुए हैं अन्यथा यह रावण को मालूम होता कि यह अवतारी पुरुष वही राम हैं जो अपने पूर्व अवतारों में असुर एवम् दानव-दल का ऐसे ऐसे विनाश किये हैं तो उनसे युद्ध करना साधारण बात नहीं होगी। इस प्रकार एक ओर कवि रावण के मुख से यह संवाद कहलाता है जो वास्तव है। दूसरी ओर इस संवाद में जो अन्तर्निहित अर्थ है वह स्वयं भक्त कवि की राम के प्रति आस्थावान उक्ति है कि आप संसार में इस प्रकार का नाटक प्रकट कर के इन असुरों दानवों का विनाश कर संसार को सुखी करते रहते हैं और अब इस रावण को क्यों बचाए हैं शीघ्र ही उसका विनाश कीजिए। इस कथन के अन्त की जो तीन चौपाइयाँ हैं [दोहा- 80। के बाद] वे चौपाइयाँ सरस्वती उच्चारें की शक्ति में राम का कथन रावण के प्रति व्यक्त करती हैं - तू इन्द्रजाल कर इस संसार में अपने पुर की रक्षा कर रहा है। तू केवल असुर नहीं है। मैं तेरी सब बातें सुन ली है, तुम्हारा मायावी इन्द्रजाल मेरे ऊपर नहीं चलेगा। असुर मारे जायेंगे, उनकी स्त्रियाँ आँसू पोंछेंगी और तुम्हारे नाश को सोच जायेंगी।

57- कृ० "रामखण्ड", युद्धप्र, विश्राम- 53, दोहा- 100 से 102.

मध्यकाल के कृष्ण भक्त और राम भक्त कवियों ने जिस प्रकार कभी अति भक्ति में अपने भगवान को छलता, छलिया कपट जाल करने वाला आदि कहा है उसी भाव- धारा में रावण के मुख से राम [विष्णु] के पूर्व अवतार चरितों और कपट- चालों का ब्यौरा दिया गया है जो अत्यन्त निकटस्थ भक्त की अपने भगवान के प्रति कही पूर्ण उक्ति के समान है। इस प्रकार इस उक्ति में शत्रु रावण की वाणी चरितार्थ हो रही है, भक्त कवि रुद्र प्रताप की वाणी चरितार्थ हो रही है और उसी अन्तर्मन में रावण के भक्त रूप की वाणी चरितार्थ हो रही है।

आदि काव्य में रावण अपनी विजय के लिए मख [यज्ञ] की साधना नहीं करता लेकिन कवि रुद्र प्रताप मेघनाद की ही तरह रावण द्वारा भी युद्ध में विजय के लिए 55 वें विश्राम में मख का आयोजन करवाते हैं। वाल्मीकि रामा- यण में कहीं भी रावण असुरों के गुरु उशना [शुक्राचार्य] के पास सहायता के लिए नहीं जाता लेकिन इन्होंने अपने राम कथा के युद्ध पद में इस कल्पना का विस्तार किया है। उसी लक्ष्मण को शक्ति मारी थी लेकिन लक्ष्मण पुन: जीवित हो उठे। यह कथा पीछे विश्राम 54 में वर्णित है। रावण बड़ी प्रसन्नता से युद्धभूमि से लौटा था कि मैंने लक्ष्मण को मार दिया लेकिन घर पहुंचने पर जब उसे यह समाचार मिला कि लक्ष्मण जीवित हो उठे तो वह बहुत ही दुखी हुआ और तत्काल रथ सजाकर गुरु उशना [शुक्राचार्य] के पास पहुंचा। यहां पर कवि ने गुरु शुक्राचार्य के चित्र का आकर्षक वर्णन किया है। गुरु सोने की जंजीर में अनेक मोतों की माला पहने हैं। रत्न जटित स्वर्ण- मुकुट चमक रहा है।आसन स्वर्ण निर्मित है उस पर भी अनेक मणियां जटित हैं। मणियों की ज्योति में उनकी बड़ी छवि चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रही थी। रत्न मालाओं से अभिमंत्रित सारा वातावरण आनन्दित था और ऐसा प्रतीत होता था कि वे सदा आनन्द के अधिकारी हैं। उनका शरीर शान्त था वे अभिराम थे। हाथ में पुस्तक लेकर उसके तत्वों का मनन कर रहे थे। ऐसे गुरु के पास पहुंच करके रावण ने पिता सहित अपना नाम कहकर प्रणाम किया -

पट्टाय विवाय बताय बजाय ,
महावान विज्ञान वेगानु आय ।
महाकाल स्त्राच्य दंष्ट्रा कराले ,
नमो देव के भाल ज्वाला विशाले ।।[63]

आगे कवि ने रावण के मारे जाने के बाद विभीषण का राज्याभिषेक, सीता का राम से मिलन पुनः पुष्पक विमान से अयोध्या गमन और राम का राज्याभिषेक वर्णन आदि काव्य के अनुसार ही करके राम कथा की समाप्ति किया है और फिर विभिन्न प्रकार से भगवान राम की स्तुतियाँ कराई हैं। विश्राम 36 में राजनीति की बातों का वर्णन, ब्राह्मणों के कर्त्तव्य तथा क्षत्रियों के कर्तव्य का उल्लेख किये हैं। रामायण कथा का माहात्म्य विश्राम 37 में कहा गया है। सीता की अग्नि परीक्षा की चर्चा भी कवि ने किया है। विश्राम 37 में ही कवि ने अपने राजकुल का वर्णन किया है और विन्ध्य की गोद में बसी अपनी राजधानी माण्डव्य पुरी [मांडा] की सुषमा का चित्र खींचा है। इस पर यथेष्ट टिप्पणी आगे की जायगी। यहाँ हम भगवान राम के राज्याभिषेक के समय कवि के उत्साह वर्णित एक प्रसंग को उद्धृत करके ही आगे बढ़ना चाहते हैं।

राम का राज्याभिषेक हो गया। अयोध्या पुरी अनेक वैभव- सम्पदा से परिपूर्ण है। अनेक देश के, अनेक वेशभूषा तथा अनेक भाषाओं के व्यापारी वहाँ आ रहे हैं। अनेक वस्तु, अनेकानेक रत्नों के व्यापारी अपनी विभिन्न भाषाओं में बोलते हुए आ रहे हैं। कवि इसका वर्णन बड़े ही उत्साह एवम् पाण्डित्य के साथ करता है। इसकी एक झलक इस प्रकार है -

---

63- कृ0 "रामखण्ड", शुद्ध पद्य, विश्राम - 38, छन्द- 476, 477.

गहड़वालों का राज्य कन्नौज से काशी तक था इसलिए कवि अपने कुल को काशिराज का कुल भी कहता है -

> कनक देस माण्डव्य पुर काशिराज कुलजात ।
> गुरु वाहन आख्या तनभूमि केसरी ख्यात[75] ।।

आगे कवि लिखता है कि विक्रमी संवत् 1883 चैत्र कृष्ण एकादशी के दिन वारुणी पर्व दिन मंगलवार को तीर्थराज प्रयाग में उसने बुद्ध पथ की पद्य रचना पूर्ण की -

> विक्रमार्क भूपाल के संवत्सर विख्यात् ।
> दस सतक अरु आठ सत ऊपर तिरासी जात ।।
> कृष्ण पक्ष मधुमास के हरि वासर अनुराग ।
> पर्व वारुनी भौम के तीरथ राज प्रयाग ।।
> तिहि अवसर यह बुद्ध पथ रच्यौ विमल चरित्र ।
> मंगल करता बुद्धजन पाठन श्रवन पवित्र[76] ।।

75- बुद्ध पथ, विश्राम- 67, दोहा- 1006.
76- वही, दोहा- 1007 से 1009.

नवम् अध्याय

नवम् अध्याय

राजमय के नूतन कथा प्रसंगों की समीक्षा -

कवि रुद्र प्रताप का सुसिद्धान्तोत्तम रामकण्ठ दो ग्रन्थों का आधार लेकर चलता है जिनमें आदि कवि का वाल्मीकि रामायण मुख्य है। उनमें वाल्मीकि रामायण की उक्तियों का अनेक जगहों पर तो ज्यों का त्यों अनुवाद ही कर दिया है। कथा प्रसंग में उन्होंने आदि काव्य की अपेक्षा जो नूतन उद्भावनायें इस काव्य में समाविष्ट की है उसका आधार सम्भवतः कोलकल्प ग्रन्थ ही हो सकता है लेकिन कुछ उन्होंने स्वयं की कल्पना द्वारा और कुछ गुरु मुख द्वारा पाई हुई कथाओं को इस राम कण्ठ में समन्वित किया है। पिछले युद्ध पर्व में राम का राज्याभिषेक करके अपने ग्रंथ का अन्त करके कवि ने राम कथा की समाप्ति वैसे ही कर दिया है जैसे वाल्मीकि ने युद्ध काण्ड में अपने आदि काव्य को समाप्त कर दिया है। यह सभी विद्वानों का मत है कि उत्तर काण्ड वाल्मीकि रामायण में बाद में जोड़ा गया जिसमें मुख्य कथा सीता को निर्वासित किये जाने की है। यह कथा अधिकांश विद्वानों के विचार से कल्पित है। राम ने सीता को निर्वासित नहीं किया था। वैष्णव के कट्टरवाद सिद्धान्त के अनुसार स्त्री की पवित्रता का नाम लेकर सीता के द्वितीय वनवास की कहानी गढ़ ली गई। इस मान्यता को स्थापित करने के लिए कि स्त्रियों के पातिव्रत के प्रति समाज को उतना कठोर होना चाहिए। वरन उस युग के समाज में उन स्त्रियों की इतनी स्वतन्त्रता थी कि गार्गी जैसी ने ब्रह्मवादी विद्वानों की सभा में याज्ञवल्क्य से सीधे शास्त्रार्थ किया जिसमें वह पराजित हो गईं[1]। उसकी विदुषी होने तक वह अविवाहिता थीं। उसने याज्ञवल्क्य से विवाह करने का प्रस्ताव रखा। याज्ञवल्क्य ने कहा कि यह तभी सम्भव है जब

1- बृहदारण्यकोपनिषद्।

था। उन्होंने रावण जैसे दुर्दम्य राक्षस सम्राट का विनाश किया है। ऋषि - महर्षि, योगी- यती, पण्डित, श्रेष्ठ वीर, व्यापारी, वनवासी, पुरवासी, नगरवासी, छोटा- बड़ा ऊँच नीच ऐसा कौन था जिसका पूज्य राम का नाम लेने पर आह्लाद से नहीं भर उठता हो और जिसे इस बात का गर्व न हो कि हमारा राजा राम ऐसा है जिसने लोकोत्तर पराक्रम और चरित्र की मिसाल कायम की है। तो फिर परम तेजस्विनी नारी सीता के प्रति किसी ओछी कल्पना का जन्म उसी कोसलपुर की प्रजा के मन में कहाँ हुआ, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती जैसा कि इस प्रसंग में शूद्र की अपनी औरत को फटकारते हुए सीता के प्रति लांछन युक्त उपालम्भ देने का प्रसंग उद्धृत किया जाता है। इस प्रसंग को कल्पित करने वाला ऐसा लगता है कि राम को अलौकिक परम पुरुष न मानकर किसी गाँव का जमींदार मान रहा है। गाँव के जमींदार या मुखिया की हैसियत वाले व्यक्ति के प्रति ही उस गाँव का शूद्र इस बात को कहने का साहस कर सकता है।

ऐसी बात कहने का औचित्य इसलिए भी नहीं है क्योंकि स्वयं महाराज दशरथ के रनिवास में[3] तीन मुख्य महारानियों को छोड़कर लगभग 300 उनकी दूसरी रानियाँ थीं। जब हनुमान भरत को राम के आने का संदेश देते हैं तब भरत बहुत प्रसन्न होते हैं और प्रसन्न होकर हनुमान जी से कहते हैं कि तुमने जो यह प्रिय समाचार सुनाया उसके तुल्य कोई समुचित उपहार नहीं दिखाई पड़ रहा है तो भी मैं तुम्हें[4] एक लाख गायें, 100 गाँव और 16 कन्याएँ पत्नी के रूप में समर्पित करता हूँ। जहाँ पर कामाचार के सम्बन्ध में कभी भी यह

3- वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, सर्ग -   श्लोक

4- वा० रा०, युद्ध काण्ड, सर्ग- 125, श्लोक - 44-45.

उदार दृष्टि की यहाँ सीता के चरित्र के प्रति एक क्षुब्ध के सन्देश को बड़े प्रमुख समाचार के रूप में राम को सुनाने की बात घटित ही नहीं हो सकती है। यह कोरी कल्पना और नई कल्पना ही कही जा सकती है। यद्यपि इस प्रसंग में अनेक बातें प्रमाण स्वरूप और कही जा सकती हैं लेकिन इसको यहीं पर समाप्त किया जाता है।

हमारे सामने जो बात है वह यह है कि सीता का द्वितीय निर्वासन राम-कथा का अंग बन चुका है। महाकवि कालिदास ने भी रघुवंश महाकाव्य में उद्धृत किया है। यह बात छठी शताब्दी ईसवी की है और उसके बाद यह कथा उद्धृत होती रही है। भवभूति ने उत्तर रामचरित नाटक में इस कथा को बहुत अधिक विस्तार दिया है। यद्यपि उसके वर्णनों में बात स्पष्ट हो जाती है कि यह सारी कल्पना वैष्णव सम्प्रदाय से आयी है। इसके समर्थन में उत्तर रामचरित नाटक का एक प्रसंग उद्धृत किया जाता है - राम सीता को ब्याह कर ले आए तो सीता की अवस्था उस समय केवल 6 वर्ष की थी। उनके मुख के दाँत टूटकर नए दाँत निकल रहे थे। इसका मार्मिक वर्णन भवभूति ने किया है।[5] जहाँ वैष्णव स्मृतिकारों ने 8 वर्ष की आयु में कन्या की शादी करना अनिवार्य बताया था वहाँ भवभूति ने सीता का विवाह 6 वर्ष में करा दिया। यह बात वाल्मीकि रामायण के बिल्कुल विपरीत है।

5- प्रतनु विरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै -
दशन कुड्मलैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम् ।
ललित ललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिम विभ्रमै -
अकृत मधुरैरम्बानां मे कुतूहलमङ्गकैः ॥

- उत्तर रामचरित, अंक- 1, श्लोक - 20.

दूसरी ओर ऐसा भी प्रतीत होता है कि सीता जी वाल्मीकि आश्रम में कुछ दिन रहीं ऊपर वह चाहे जिस कारण से रही हों। क्योंकि लोकगीतों में अनेक प्रकार से इसका चित्रण हुआ है। वास्तविक लोकगीतों में भी बहुत सी बातें अपने आप गढ़ ली जाती हैं।

कवि रुद्र प्रताप की नयी कल्पना -

कवि रुद्र प्रताप सीता के द्वितीय निर्वासन के सम्बन्ध में मूल कारणों का उल्लेख तो करते ही हैं कि सीता लंका में रहीं लेकिन उसके पूर्व ही सीता राम से कुछ और बात कहती हैं। वह कहती हैं कि इन्द्र की पत्नी शची आयी थीं और उन्होंने कहा कि भगवान राम [विष्णु] इस प्रकार सम्प्रति पृथ्वी पर विहार किये और क्षीर समुद्र बिलकुल खाली पड़ा है। सारे लोकों की सुधि भुलाकर वे केवल पृथ्वी का पालन अनुरंजन कर रहे हैं। यदि भगवान अब क्षीर समुद्र नहीं चलेंगे तो हम किसके आधार पर रहेंगे इसलिए माता दया कीजिए कि भगवान् ब्रह्मादि देवताओं को आनन्दित करें और वहाँ चलें। इसलिए मैं कहती हूँ कि-

यह त्रिभुवनहिं सुराधिपति कीन्हेउ भो तन आय ।
मम अनुशासन पाय तोय पुनि निज भवन सिधाय[6] ॥

यह सुनकर भगवान राम ने कहा कि तुम्हारी रुचि के अनुसार ही काम करूँगा। प्रातःकाल तुम्हारा परित्याग कर दूँगा। तुम वाल्मीकि आश्रम में रहना लेकिन इसमें मेरा दोष मत देना और मैं क्षीरसागर की ओर प्रस्थान कर रहा हूँ। इसके बाद विजय नाम के उनके एक दूत ने उनके पूछने पर कहा कि एक माली ने अपनी स्त्री को पिछली रात में ऐसा अनुशासन दे रखा था -

सिसु सकल दुर पुनि भई कासी । सिय सासन रहु सौ तन मासी ॥
विगत निसा तव आयसु आना । नहिं रखिहउ मम छवि नहिं रामा[7] ॥

6- कु० रामखण्ड , रामचन्द्र, दोहा- 131.
7- वही, दोहा - 132.

से लेकर 52 तक पहले [सर्ग 46- 47] हिन्दू राजाओं की वंशावली दी है। फिर काशिराज का वंश वर्णन किया है। वैदिक राजा देववास से काशिराज के वंश की एक सूचना स्थापित की है और चन्द्रवंशी जयचन्द्र को उन्हीं का वंशज कहा है। इसके बाद विश्राम 48, 49 और 50 में युधिष्ठिर के काल से लेकर विक्रमादित्य तथा मुसलमानों के आक्रमण से पहले तक के राजकुलों का वर्णन किया है। विश्राम 51 में मुसलमान बादशाहों के राज-वर्णन के साथ ग्रुड [दीन] के समय राज्य का वर्णन और उसकी नीति की प्रशंसा की है। विश्राम 52 में कवि अपने वंश का विस्तृत वर्णन करता है और उसे कन्नौज के गहरवार जयचन्द्र की वंशावली से शुरू कर अपने पिता तक की वंश परम्परा का विस्तृत वर्णन करता है। अपने पिता के यश का वर्णन प्रायः उन्होंने पिछले काण्डों में भी किया है।

कवि कहता है कि मैं अपने वंश का और कलियुग में जो राजा हुए उनका वर्णन करने जा रहा हूँ। मैं क्या कहूँ। मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैंने सरस्वती देवी रूपी जहाज पर बैठकर रामायण रूपी समुद्र को पार कर लिया है। जहाज जैसे एक द्वीप से दूसरे द्वीपों को पहुँच जाते हैं वैसा बल और सामर्थ्य मेरे अन्दर नहीं है कि जहाज को लेकर मैं पार चला जाता। भगवान राम का यश पापों को हरण करता है और मेरी छोटी बुद्धि पापों से भरी हुई है। इस महान् ग्रन्थ की रचना का पार मैंने कैसे पा लिया, यह केवल करुणा कल्पतरु भगवान श्री राम की कृपा का ही फल है। चराचर के स्वामी श्री राम ही अपने यश कथा के रहस्य को जानते हैं। युद्ध तो भगवान् विष्णु करते हैं और विजय कीर्ति इन्द्र को मिलती है। मैं तो एक तुच्छ कीट हूँ, मुझे हाथी का बल मिल गया। राम के यश को देखकर मैंने वाणी की रचना की है। मुझमें कौशल नहीं है और बुद्धिहीन भी हूँ लेकिन सोचता हूँ कि राम ने ही मेरी सहायता की है जो ग्रन्थ की रचना पूरी हुई नहीं तो मेरे पापों का कहीं ओर- छोर नहीं है, सिन्धु की लहरों के समान वह अपार है -

यह तो कवि की बात हुई लेकिन सुहलदेव का ऐतिहासिक उल्लेख भी है। अयोध्या के राम जन्मभूमि मन्दिर का महमूद गजनवी के सेनापति सालार मसूद ने जब सन् 1033 में आक्रमण किया तब राजा सुहल देव ने उसका सामना कर उसे परास्त किया। विलास 30 में कवि ने पृथ्वीराज चौहान और जयचंद की ऐतिहासिक प्रतिद्वंदिता का वर्णन किया है। इस वर्णन से यह भी प्रतीत होता है कि माणिकचंद जयचन्द के भाई थे और कवि का वंश माणिकचन्द से चलता है। पृथ्वीराज रासो में यह वर्णित है कि जब जयचन्द ने राजसूय यज्ञ किया और उसके साथ संयोगिता का स्वयंवर आयोजित किया और उसमें पृथ्वीराज चौहान को बुलाया नहीं जबकि संयोगिता पृथ्वीराज को ही वरण करना चाहती थी तो संयोगिता को अपहरण करने के लिए चन्द बरदायी से योजना बनाकर स्वयं पृथ्वीराज उसकी सभा में पहुँचा और उसकी सेना कन्नौज से कुछ दूर युद्ध के लिए तैयार थी। हमारे कवि ने भी चन्द बरदायी के जयचंद की सभा में पहुँचने और सन्धि कराने के प्रयास का वर्णन किया है -

चंद कहेउ जयचंद से दिल्लीपति सुलतान । [30]
देहु सुता प्रिय ताहि को करहु जग्य नौ मान ।।

लेकिन इतिहास की बात है कि सन्धि नहीं हुई और पृथ्वीराज ने संयोगिता का हरण भी कर लिया और फिर मुहम्मद गोरी के आक्रमण में दोनों राजवंशों का नाश हो गया। अपने इस अपमान का बदला चुकाने के लिए कन्नौज नरेश जयचन्द ने पृथ्वीराज चौहान के ऊपर आक्रमण करने के लिए मुहम्मद गोरी को सहायता का वचन देकर बुलाया। इतिहास में कहीं कही आने वाली इस बात को कवि महप्रताप ने भी स्वीकार किया है -

लेहि विरोध गोरीन को बोलि पठाय मलेछ । [31]
दिय सिखाय चहुआन सों सैन चाहुव भयउ विल्लेछ ।।

इतिहास की इस बात का भी विलास 49 में कवि ने सटीक वर्णन किया है।

30- सु० रामकवि, राजवंश, दोहा- 347.
31- वही, दोहा- [illegible]

उदोत सिंह, पृथ्वीपाल सिंह और देवकी सिंह। कवि रुद्र प्रताप इन्हीं देवकीसिंह के पुत्र थे। रुद्रप्रताप के पुत्र उग्रपाल सिंह, उग्रपाल सिंह के पुत्र रामप्रताप सिंह। राजा राम प्रताप सिंह बड़े राम भक्त थे। उन्होंने अपने पितामह कवि रुद्रप्रताप के इस रामखण्ड को महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी से सम्पादित कराकर प्रकाशित कराया और इसे राम-कथा- पिपासुओं में वितरित भी कराया। आज भी इसकी प्रतियाँ प्रचुर मात्रा में माण्डा के राजभवन में रखी हुई हैं। राम प्रताप सिंह बड़े धर्मनिष्ठ और भगवान राम के अनन्य भक्त थे। वे स्वयं भी कवि थे। भक्तिपरक कजली और फगुओं के छन्द उन्होंने लिखे हैं।

राम प्रताप सिंह के पुत्र राम गोपाल सिंह थे। उन्होंने एक अंग्रेज महिला से कक्षा 8 तक की अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की थी। वे प्रायः बीमार रहा करते थे और निःसंतान ही उनकी मृत्यु हो गई। मृत्यु के 6 वर्ष पूर्व उन्होंने अपने वंश के राम गढ़ डइया के ताल्लुकेदार बाबू भगवती प्रसाद सिंह के पुत्र विश्वनाथ प्रताप सिंह को गोद ले लिया था। यही उनके उत्तराधिकारी हुए जिनकी वर्तमान भारतीय राजनीति में बहुत चर्चा है। वर्ष 89-90 में ग्यारह महीने तक भारत के प्रधानमंत्री भी रहे।

विश्राम 51, 52 और 53 में कवि ने दिल्ली पर अधिकार करने वाले सार्वभौम राजाओं का वर्णन किया है। इसमें उन्होंने पाण्डव सम्राट युधिष्ठिर से शुरू किया है। लेकिन ऐसा लगता है कि इन्होंने महाभारत का अध्ययन नहीं किया था और न ही विष्णुपुराण और भागवत का। इनके इन कथनों अथवा उल्लेख का स्रोत क्या था स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। इन्होंने युधिष्ठिर का राज्यकाल 82 वर्ष 3 मास 2 दिन कहा है। परीक्षित का राज्यकाल 60 वर्ष कहा है -

फिर उन्होंने किसी वंश के राजा और नाथ का वर्णन किया है। इसमें ७ राजा हुए। इसके बाद कुमायूं के पहाड़ पर विख्यात सोम वंश के राजा शकचन्द्र का वर्णन है जिन्होंने दिल्ली पर 14 वर्ष राज्य किया। इसका वर्णन करने के पश्चात् विश्राम पचास समाप्त हो जाता है।

विश्राम 51 में कवि राजा विक्रमादित्य धारा नगर और उज्जैन का वर्णन करता है। इसका प्रारम्भ परमार राजाओं से करता है। फिर कवि ने यहाँ पर जैन ग्रन्थ में वर्णित गन्धर्वसेन राजा का चरित्र लिखा है और जिस प्रकार उनका धार राजा की पुत्री से विवाह हुआ इसका वर्णन किया है। इन गंधर्वसेन की दो तीन रानियों से तीन पुत्र हुए जिनमें दो अत्यन्त ही प्रसिद्ध हुए। भर्तृहरि और विक्रम। ज्योतिषी सम्राट् वराह मिहिर इन्हीं विक्रमार्क [विक्रमादित्य] की सभा में रहे। भर्तृहरि ने वैराग्य ग्रहण किया। यह तो इतिहास प्रसिद्ध है। कवि लिखता है कि भर्तृहरि बड़े होने पर भी राज्य अपने भाई विक्रमार्क को दे दिये और स्वयं गोरख के चरणों में समर्पित हो गये। भर्तृहरि के ग्रन्थ में यह सब मैंने देखा है। वे विन्ध्य पर्वत पर रहने लगे। सब जैसा मैंने उन ग्रन्थों में देखा वैसा वर्णन किया है। फिर आगे भी कवि लिखता है कि "विक्रम प्रबन्ध" में मैंने यह भी देखा कि भर्तृहरि तुषार गिरि हिमालय पर और बाद में वाग्मती नदी के किनारे नासिक में भी रहे। विक्रमादित्य ने उज्जैन का भलीभाँति पालन- पोषण किया।

उक्त बातों पर वास्तुक वर्णन :-

ऐसा लगता है कि कवि ने सुनी सुनाई बातों के आधार पर ये सब वर्णन किये हैं और उनका एक दूसरे से सम्बन्ध जोड़ दिये हैं। भर्तृहरि स्वयं एक सिद्ध पुरुष थे। विक्रमादित्य के भाई थे यह बात तो ग्रन्थों में भी कही गई है लेकिन भर्तृहरि गोरखनाथ के चरणों में समर्पित या समाधित कैसे हो सकते हैं क्योंकि गोरखनाथ का समय 11वीं सदी ईस्वी है और विक्रमादित्य तथा

भ

भर्तृहरि का समय 57 ई० पू० है। कवि की ये भूलें क्षम्य योग्य हैं। इसलिए कि तब तक भारतीय इतिहास की कोई पुस्तक लिखी नहीं गई थी। जो कुछ इतिहास था वह पुराणों में था। कवि ने उनको पढ़ा नहीं है। सम्भवतः उसने एक ही ग्रन्थ देखा है [illegible] उसी के आधार पर अपनी "राज कथा" लिखा है। इतिहास की यह कुछ अत्यन्त रोचक और चौंकाने वाली बातें भी कहता है जिनमें अन्वेषण एवं अनुसन्धान की जरूरत है। किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में यह बातें तारतम्यविहीन हैं। तारतम्यविहीन होने पर भी उनके महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता।

विश्राम 52 में कवि ने विक्रमादित्य के अनन्तर गन्धर्व कुल के राजाओं का वर्णन किया है। इसमें नाटकीय आकर्षण अंश भी हैं जिनमें कुतूहल और माधुर्य की विशेष मात्रा है।

परकाया प्रवेश विद्या से वसुपाल के शरीर में प्रवेश किये हुए विक्रम ने मालो- वंश शालवाहु को पराजित कर दिया। वसुपाल के वंश के राजाओं की लम्बी सूची कवि ने दी है जिन्होंने दिल्ली पर राज्य किया और अन्त में राजा त्रिलोकचन्द्र हुए जिन्होंने इस वसुकुल का अवसान किया। उनके वंश के राजाओं ने बहुत समय तक पृथ्वी पर राज्य किया। इसके अनन्तर [illegible] के राजाओं का राज्य और वैष्णव बैरागियों का राज्य भी आठ वर्ष 5 महीना तक रहा। कई और छोटे कुलों का वर्णन करने के पश्चात् कवि ने चौहान कुल के महाराज पृथ्वीराज चौहान का नाम लिया और पृथ्वीराज चौहान ने 15 वर्ष तक दिल्ली पर राज्य किया। कवि कहता है कि चौहान के बारे में क्या कहूँ जिनका इतिहास सारी दुनिया जानती है। कवि ने गणना की है कि 4 हजार 49 वर्ष की अवधि में धर्मराज युधिष्ठिर से लेकर पृथ्वीराज चौहान तक दिल्ली में 120 राजा हुए -

न त धन मन नहिं कछु यत काजा । जिमि ये जवन भूमि के राजा ।।
सुमिय सिंह पति बंस करानी । कीन्ह अजोचित नहिं पहमानी ।।

हुमायूं के बाद उसके पुत्र अकबर की अत्यन्त प्रशंसा कवि ने की है और उसे केवल भारत ही नहीं तीनों लोक में अपनी कीर्ति फैलाने वाला कहा है। कवि कहता है कि उसकी समानता में हिन्दू राजा नहीं हैं। वह धर्मशील था और देवताओं के समान उसका मनोहर रूप था। उसने 51 वर्ष 2 महीना 9 दिन तक हिन्दू राजा होकर सतयुग की स्थापना की -

ता सुत विदित लोक सब मांहीं । जेहि पटतर हिन्दू पति नाहीं ।।
धर्मधाम नीकी सुचि सेवा । रूप मनोहर मानहु देवा ।।

वीर अकब्बर शाह जाह दुक्करन छारन ।
दल तमुह अनगाथ अमन सब तारन वारन ।।
वीर कल्यान मुरन धीर को मनद कतारन।
उत्तर छिति त्यान सुगन कोटिन सुखीवारन।।
महा भुसुण्डी वक्त दल अग्नि वान और तोमर ।
अति प्रचण्ड सारी बहु सन्मुख नहिं रिपुगन परव।।
वर्ष एकावन मास द्वय और दिवस परजंत ।
सतयुग थाप्यो सकल कौन सिंहु नरवंत[39] ।।

इसके अनन्तर जहांगीर शाहजहां और औरंगजेब के वर्णन इतिहास के अनुसार हैं। कुछ मुसलमानों के पतन के साथ नादिरशाह और अहमदशाह के आक्रमण का वर्णन कवि ने किया है। साथ ही रुहेलों का भी वर्णन किया है जिन्होंने मुगलों से बगावत की थी। उल्लेखनीय है कि कवि ने इस प्रसंग में महाराणा प्रताप और औरंगजेब से लोहा लेने वाले छत्रपति शिवाजी का तथा महाराज छत्रसाल का जिक्र तनिक भी नहीं किया है। इससे उसकी उस दृष्टि का पता चलता है जिसमें वह दिल्लीश्वर को या सार्वभौम सत्ता-सम्पन्न राजा को ही अपने वर्णन का विषय बनाता है जिसके अधीन वह स्वयं रह सके। उसमें क्षत्रिय का अभिमान या जातीय स्वाभिमान का कहीं उन्मेष नहीं दिखाई

दशम् अध्याय

दशम् अध्याय

कवि का कला पक्ष

[क] छन्द -

भक्ति एवम् सन्त साहित्य लिखने वाले कवियों ने कला पक्ष की ओर ध्यान उन्होंने ही दिया है जिन्होंने किशोरावस्था में विद्या का अध्ययन किया, पुराण, काव्य और शास्त्र पढ़े तथा व्याकरण का अध्ययन किया अन्यथा भक्ति एवम् संत-धारा के अधिकांश कवियों ने न इसकी चर्चा की है और न इसकी ओर ध्यान ही दिया है। क्योंकि वे जन्मजात कवि थे और उनकी वाणी में सहजता थी। इस-लिए काव्य का कलापक्ष उनमें स्वयं ही आ गया है। लेकिन जो बिल्कुल सन्त वाणियाँ हैं उनमें कलापक्ष बिल्कुल न के बराबर है। गोस्वामी तुलसीदास ने राम चरित मानस के आरम्भ में कविता और काव्यशास्त्र के बारे में बिल्कुल चर्चा की है और अपनी दीनता प्रकट करते हुए लिखा है -

कवित विवेक एक नहिं मोरे ।
सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे ।।[1]

अर्थात् कवित्त लिखने की प्रतिभा मुझमें नहीं है यह कोरे कागज पर लिखकर सत्य कह रहा हूँ। कवि रुद्र प्रताप ने भी अपने गुरु श्री रघुनाथ जी से उपनयन संस्कार के अनन्तर काव्यपुराण, व्याकरण आदि पढ़े थे जैसा कि उन्होंने मिथिला पव [बाल काण्ड] के आरम्भ में उल्लेख किया है। उन्होंने भी तुलसीदास की ही भाँति यहाँ पर अपनी विनम्रता प्रकट की है -

छत्र पुरन्दर उपरि विराजू । लिखउँ सुभग कथा रघुराजू ।।
कवि न होउँ नहिं कवित प्रवीना। भाव भेद भूषन ते हीना ।।
रस न काव्य गुन कछु जेहि माहीं। हरि कथा पवित्र पढ़ि जन जाहीं।।
कै अक्ष विरचैं जेहि नाथा । अनिवरहिं मम भ्रम बुध निज नाथा।।
पद- पद प्रति रचि बहु विधाना। जाहि पाठ करि मनुज अघाना ।।

1- रामचरितमानस , बालकाण्ड, दोहा- 9

अर्थात् कवि कहता है कि, मैं कवि नहीं हूँ और न कविता करने की मुझमें चतुराई है। भावों के भेद और अलंकार मैं नहीं जानता। मेरे इस प्रबन्ध में न तो रस है, न गुण और न रीति है। इसलिए कोई इसे काव्य की दृष्टि से देखने के लिए आतुर न हो। यह काव्य हो ही नहीं सकता और न मैं कवि ही हूँ। यह तो केवल भगवान की ओर जाने के लिए सड़का [सीढ़ी] निर्माण किया है। इस पर चढ़कर लोग भगवान की ओर जा सकें। लेकिन इस ग्रन्थ की रचना में भी जो श्रम किया है उसे आगे के विद्वान प्रारम्भ लोग समझेंगे। उसने फिर कहा कि वाल्मीकि रामायण को देखकर उसे भाषा [हिन्दी] में अर्थात् अपनी बोली में प्रबन्ध रच देने की मेरी इच्छा हुई और उसे मैंने पूरा किया। यह सब कहते हुए वह इस विनय के भीतर अपना यह अभिमान प्रकट ही कर देता है कि मैं वाल्मीकि के ग्रन्थ को भाषा में रच दे रहा हूँ। यह केवल कवि के सिवा और कौन कर सकता है। सारी विनय, उसके अभिमान गर्भित विनय की शब्दावली काव्य की भंगिमा से हमें चमत्कृत करती है -

अब न रस न छन्द कौं गुन न परम प्रवीन ।
केवल रघुवर यश रचौं भाषा ग्रन्थ नवीन[2] ।।

यहाँ पर कला के तीन पक्ष हैं -

[1] छन्दों के विविध प्रयोग :- यद्यपि कवि ने यह प्रबन्ध तुलसीदास के ग्रंथ के समान दोहा चौपाइयों में किया, लेकिन केशवदास की "रामचन्द्रिका" के अनुसार विविध छन्दों का प्रयोग भी किया है। ये विविध छन्द स्तुति पद, सुन्दर पद तथा युद्ध पद में अधिक प्रयुक्त हुए हैं। यह भी आश्चर्य की बात है कि कवि ने कवि केशव का नामोल्लेख भी नहीं किया है लेकिन यह केशव की काव्य कला तथा "रामचन्द्रिका" से प्रभावित है जिसकी चर्चा आगे की जाती है।

2- कृ० राम अवधी जैन पद, विश्राम- 1, दोहा- 46.

[2] भाव- रस- अलंकार रीति एवम् गुण का प्रयोग :- भाव- रस का प्रकृष्ट प्रयोग प्रबन्ध में नहीं मिलता है। अलंकारों की चमत्कारिक कल्पना भी नहीं है लेकिन कवि ने शब्दों के अनुप्रासिक एवम् प्रसंगानुकूल अर्थ व्यंजक प्रयोग करने में अच्छी सफलता प्राप्त की है।

[3] कथा विन्यास की शैली :- कथा पक्ष की तीसरी विशेषता कथा - विन्यास की शैली में देखने को मिलती है जो मध्यम कोटि की है।

उपरोक्त तीनों पक्षों पर विस्तार से विवेचन किया जा रहा है -

छन्द प्रयोग - जैसा कि कहा गया है कवि रुद्र प्रताप ने दोहा, चौपाई, सोरठा, बरवै तथा हरिगीतिका छन्द गोस्वामी तुलसीदास से लिये हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत से आर्या छन्द भी लिया है। युद्ध- वर्णन के प्रसंग में महाकवि केशवदास का अनुकरण करते हुए उन्होंने कई नए छन्दों का प्रयोग किया है। इनमें तोमर, दोधक, नाराच, रूपमाला, कवित्त [मनहरण] आदि वर्णिक और मात्रिक दोनों ही छन्दों का प्रयोग किया है। कवि ने इन छन्दों को उचित कथा प्रसंगों में ही प्रयोग किया है इससे उनकी उपयोगिता प्रमाणित होती है। लेकिन बरवै और आर्या छन्द उन्होंने अपनी कवित्व- शक्ति के प्रदर्शन के निमित्त ही विरचित किए हैं। कथा- प्रसंग का औचित्य उनके साथ नहीं है। वैसे भी ये छन्द मुक्तक अथवा अतिरिक्त सामान्य कथा के प्रसार में ही अधिक शोभित होते हैं।

"सुसिद्धान्तोत्तम राम कथा" में प्रयुक्त छन्दों का वर्गीकरण इस प्रकार है -

[क] सम मात्रिक छन्द :- चौपाई, हरिगीतिका, रूपमाला, सार, त्रिभंगी तोमर आदि ।

[ख] अर्द्ध सम मात्रिक छन्द :- दोहा, सोरठा, बरवै, उल्लाला, आर्या आदि ।

[ग] "सम" गणात्मक वर्णिक छन्द :- तोटक, नाराच, मालिनी, शार्दूल, विक्रीडित, दोधक, भुजंग प्रयात, सवैया [दुर्मिल] आदि ।

[घ] वर्णिक छन्द :- कवित्त [मनहरण] घनाक्षरी ।

[ङ] विषम मात्रिक छन्द :- छप्पय, कुण्डलिया ।

ऊपर लिखे हुए छन्दों में कवि की लेखनी दोहा, चौपाई और सोरठा पर अधिकार रखती है और कहीं-कहीं तो चौपाइयों का लालित्य अतिशय मनोहर बन पड़ा है। अर्थ के अनुकूल शब्दों की लय और ध्वनि अभिव्यक्ति की साक्षी देते हैं और मुख्य रूप से यह समस्त प्रबन्ध इन्हीं छन्दों में लिखा गया है। युद्ध के प्रसंग में यद्यपि प्रायः सभी उपयुक्त वर्णिक छन्दों का प्रयोग किया है। फिर भी यहाँ रूपमाला और हरिगीतिका छन्द अपना अतिरिक्त लालित्य रखते हैं। शेष छन्द कवि के अपने पाण्डित्य एवम् रचना वैचित्र्य के लिए हैं ।

कुछ छन्दों के उदाहरण - [क] सम मात्रिक छन्द :-

[1] चौपाई :- यह बहुत प्रसिद्ध छन्द है। महाकवि तुलसीदास ने अपना महान ग्रन्थ रामचरितमानस इसी छन्द में लिखा है। तब से चौपाई छन्द हिन्दी भाषा में बहुत ही ललित एवम् आकर्षक रूप से प्रयुक्त हो गया है। प्रायः तीन या चार चौपाइयों [आठ या दस अर्धालियों] के बाद एक दोहा रखा जाता है। तुलसीदास के बाद हिन्दी में अनेक प्रबन्धों की रचना

यही चौपाई- दोहा की शैली में हुई। लेकिन यह चौपाई छन्द तुलसीदास को भी अपभ्रंश साहित्य से मिला। सातवीं आठवीं सदी ईस्वी में स्वयंभू कवि ने अपना पउम चरिउ प्रबन्ध यही चौपाई दोहा की शैली में लिखा है। अब तक की जानकारी के अनुसार चौपाई छन्द स्वयंभू कवि का है। तुलसी-दास जी की चौपाई छन्द की रचना, ध्वनि, ताल, लय युक्त है। कवि रघु प्रताप ने पूरे प्रबन्ध में तो नहीं लेकिन जहाँ तहाँ चौपाई छन्द के अच्छे उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

चौपाई जैसा कि नाम से ही विदित है, इसके चार चरण होते हैं। इसके प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं। चरण के अन्त में जगण |ISI| या तगण |SSI| नहीं होना चाहिए। यथा -

> बालमीकि रचना शुभ देखी । भाषा कर कवि बहुं विसेखी ।।
> सोरह राम कुमारन पाई । औ उत्पन्न राम यश आई[3] ।।

<u>|2| हरिगीतिका :-</u> यह 28 मात्राओं का मात्रिक छन्द है। प्रत्येक चरण में 16 और 12 मात्राओं के विराम से 28 मात्राएँ होती हैं। अन्त में लघु, गुरु होना आवश्यक है। यथा -

> उपवीत पीत दुकूल सुचेल निषंग दोउ कटि सोहहीं ।
> सारंग कर विभ्राज मान त्रितीय रवि सम सोहहीं ।।
> सोभित सुजानुन पानि रक्षित प्रेम पति रघु राम की।
> उभी विलोक विलत सोभित कौ कथा चरणे[4] ।।
>
> - | परसुराम मिलन, पंचम |

3- कु० राम जन्म, बीज पद, विश्राम- 1

4- वही, विश्राम- 13, छन्द- 177.

[3] त्रिभंगी छन्द :- इस छन्द के प्रत्येक चरण में 32 मात्राएँ होती हैं। दस, आठ और छ: मात्राओं पर विराम होता है तथा अन्त में गुरु होता है।

उदाहरण -

> बावनपति नारी अति सुकुमारी कंचन वारी रूप भरी ।
> तारापति आनन जात बखानन लाजनि लौं सौगंध धरी।।
> ता के कुच न्यारे काम कँगूरे रत्नन पूरे कंचु कसे ।
> केहरी सुकटा त्रिकुटी बंका नयन अबंका काम कसे ।।[5]

[ब] अर्द्ध सम मात्रिक छन्द -

दोहा :- यह अत्यन्त प्रचलित छन्द है और यह अपभ्रंश साहित्य से हिन्दी को मिला है। सतसईकार, कबीरदास, शृंगार काव्य और रस के कवियों में दोहा छन्द अपनी लय ध्वनि से चमत्कारिक होता है। इसके पहले और तीसरे चरण में 13- 13 मात्राएँ और दूसरे और चौथे चरण में 11- 11 मात्राएँ होती हैं। दूसरे और चौथे चरण के अन्त में गुरु लघु होना आवश्यक है। इसी प्रकार पहले और तीसरे चरण के आरम्भ में जगण नहीं होना चाहिए।

उदाहरण -

> सहसबाहु भंजन प्रबल परेउ पतंग समान ।
> सारदूल के पच्छ सम कटि निसंग बखान।।[6]
>
> - [वीर पद, परशुराम वर्णन]

5- गुरु राम कण्ड, वीर पद, छन्द- 49

6- वही, दोहा- 1039.

सोरठा :- यह छन्द दोहा का ठीक विपरीत होता है। पहले और तीसरे चरण में 11- 11 मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे चरण में 13-13 मात्राएँ होती हैं। पहले और तीसरे चरण के अन्त में गुरु लघु तथा दूसरे और चौथे चरण के आदि में जगण नहीं होता ।

उदाहरण -

[1] सेवाधिक अति जोंग, बाबी रामउ लोक के ।
काम रसातम भोग , प्रनमउं सबो पद कमल[7] ।।
-[रामायन, सोरठा]

[2] नदि उर एक मसान निर्मित भयउ पहान जनु ।
जहं पर पुरान वन्दिन सबद पवित्र कहो[3] ।।
- [रामायन रामराय कमल]

[ग] विषम मात्रिक छन्द :- इसमें 6 चरण होते हैं। चार एक तरह के दो एक तरह के। इसीलिए इसे विषम मात्रिक छन्द कहते हैं ।

छप्पय :- यह छन्द रोला और उल्लाला मिलकर बनता है। रोला के प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ होती हैं। 11 और 13 पर विराम होता है।

उल्लाला दोहा की प्रकृति का छन्द है। इसका एक चरण 13 मात्राओं का होता है।

उदाहरण -

1- रहय कातिकी चन्द्र जोन कृत्तिका सोहावय ।
महा कातिकी जोन जन्म गुरु नदी उम्हावय ।।
चन्द्र कृत्तिका बेर भानु तुलिकाला जानिय ।
गुरु कृत्तिका बेर वार रचनाकर जानिय ।।
पदुमक पुष्कर प्राप्त भनु कपिला जोन नर देवहीं।
हरितहिं किलहिं विचार जोन बेकुण्ठ को पद देवहीं ।।
-सिमिकोसा पद, उल्लाल पद

7- गु. रामकृष्ण, रामायन, सोरठा- 2.

वर्णिक छन्द -

कवित्त [मनहरण] :- कवित्त [मनहरण] छन्द रूपकाल के कवियों का बहुत प्रिय छन्द रहा है। और इस के कविन में इसका प्रयोग कवियों ने बहुत किया है। "भूषण" का "शिवराज भूषण" इसी छन्द में है। इसमें प्रत्येक चरण में 31 अक्षर होते हैं। 16 और 15 पर विराम होता है। यदि आठ,आठ तथा आठ, सात का क्रम रहे तो इसकी लय बहुत उत्तम होती है। अन्त में गुरु होता है। कवि पद्माकर एवम् जगन्नाथ दास रत्नाकर ने इस छन्द का बड़ा सुन्दर प्रयोग किया है। चरण के अन्त में गुरु होता है।

कवि रुद्र प्रताप के कवित्त लय की दृष्टि से बहुत सटीक नहीं हैं।

उदाहरण :-

प्रबल प्रचंड उदंड करिके भट ,
चहुँ व चहुँ अरस महाबिल को झटा भरे ।
परम कसावे और उमावे जो कुही के वेग,
मंद धुनि गाजे और गाजे घघरा करे ।।
बीरन उठो और ठठो जो भुकुटी कर ,
रन धुम मचो करिको तापि को करे ।
राजपति पदाति जो बढ़ाति जाति तुरन घर,
भाँति भाँति भेद ते कला के जो पटा धरे[14]।

भाव, रस , अलंकार -

कविता का चमत्कार भाव रस और अलंकार के भलीभाँति निर्वाह किये जाने पर ही निर्भर होता है तथा भाव, रस अलंकार की निष्पत्ति इस बात पर निर्भर करती है कि कवि ने अपनी काव्य रचना के लिए किस प्रसंग का चुनाव किया है। सांसारिक जीवन में सुख- दुःख, प्रकृति-

---

14- कु0 रामखण्ड, रामपथ, छन्द- 348.

निवृत्ति, शान्ति- अशान्ति, अकाल - सुकाल आदि अनेकानेक द्वन्द्वात्मक परिदृश्य घटित होते रहते हैं। सच्चा कवि काल के घटित चक्रों में जिस किसी को भी अपनी कविता का विषय बनाता है उसकी वाणी उसकी प्रतिभा के बल से उसे काव्य- पाठक के हृदय के समक्ष उपस्थित कर देती है। लेकिन ऐसे कवि विरल ही होते हैं। भारतीय कवियों ने अनेक कथा- प्रबन्धों को अपने काव्य का विषय बनाया है लेकिन उनमें रामायण और महाभारत के कथा प्रबन्ध मानवीय जीवन में इतने अधिक संश्लिष्ट हैं कि उनके किसी एक अंश को भी लेकर काव्य- सौन्दर्य एवम् चमत्कार से परिपूर्ण काव्य की रचना की जा सकती है। अतीत में कई एक कवियों ने ऐसी लोकोत्तर रचनाएं की हैं जिनमें कवि कालिदास का नाम सर्वोपरि है। हमारे यहाँ साहित्य चिन्तकों ने रामायण, महाभारत तथा गुणाढ्य की बृहत्कथा को साहित्य रचना का उपजीव्य ग्रन्थ कहा है और इसमें क्या सन्देह कि मध्यकालीन इतिहास में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवम् देशी भाषाओं में इन तीन ग्रन्थों के कथानकों को लेकर विपुल रचनायें की गईं हैं। लेकिन यहाँ पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गोस्वामी तुलसीदास का "रामचरितमानस" केवल वाल्मीकि रामायण के आधार पर नहीं लिखा गया है बल्कि प्रायः उत्कृष्ट आचार- संहिता से संवलित धर्म और जीवन से सम्बन्धित बहुत सारा संस्कृत का वाङ्- मय तुलसीदास के गौरव ग्रन्थ "रामचरितमानस" का आधार है। उसमें भक्ति- भावना स्वाभाविक उजागर हुई है और फिर हम कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि "रामचरितमानस" एक अभिनव राम कथा है।

सन्त महाकवि तुलसीदास की इस अभिनव रामकथा ने परवर्ती राम भक्त कवियों को इतना प्रभावित किया कि अनेक कवि इस राम कथा का वर्णन करने के लिए लालायित हो उठे। ऐसी ही लालसा अवध जनपद माँडा के राजा कवि रुद्र प्रताप सिंह की भी है। तुलसीदास की प्रेरणा से इस रामकथा

ने प्रबन्ध के प्रणयन में राम भक्ति को आधार तो बनाया ही, उन्होंने अनेक असम्बद्ध विषयों को भी लिया। ऐसा लगता है कि वे अपने सारे ज्ञान को राम- कथा के माध्यम से प्रबन्ध में निबद्ध कर देना चाहते थे। मुख्य रूप से आयुर्वेद का विशद वर्णन, पौराणिक धार्मिक आचारों, व्रतों, रीतिरिवाजों का विस्तृत वर्णन, पौराणिक राजाओं के राजवंश तथा मध्यकालीन एवम् आधुनिक राजाओं के राजवंश का वर्णन उन्होंने विस्तार से किया है।

इस तरह इनका यह ग्रन्थ जिसका नाम इन्होंने बुधिकान्तोत्तम रामकाण्ड रखा है, केवल राम- कथा- काव्य न रहकर हिन्दी का महापुराण बन जाता है। इसके[15] ऊपर आज से 30 साल पहले सन् 1956 में श्री जयशंकर त्रिपाठी द्वारा लिखित "हिन्दी का महापुराण" शीर्षक निबन्ध जब मुझे पढ़ने को मिला तो मैं इस प्रबन्ध के प्रति आकृष्ट हुआ और रामकथा के माध्यम से इन्होंने जो नये- नये प्रसंग उद्भावित किये अथवा दूसरे स्थानों से लेकर इसमें मिलाया उनको देखकर मुझे इसके अध्ययन की प्रेरणा हुई। तात्पर्य यह कि कवि बहु प्रताप वाली प्रतिभा के कवि हैं तथा उनकी वाली प्रतिभा पुराण- इतिहास के महार्णव में लगी हुई है। अतः भाव, रस और अलंकार का सुसज्जित काव्य सौन्दर्य रचना में जिस प्रकार आना चाहिए वह नहीं हो पा सका है। लेकिन जितना कुछ आया है उससे यह प्रबन्ध काव्य- प्रबन्ध कहा जायेगा, इसमें सन्देह नहीं है।

भाव और रस -

भाव- रस की सहज एवम् सफल अभिव्यक्ति ही कवि की सफलता की चरम कोटि है। भारतीय काव्यशास्त्रियों का रस- सिद्धान्त इसी भाव का व्याख्यान है। भाव की चार कोटियाँ हैं - [1] भाव, [2] विभाव, [3] अनुभाव, और [4] संचारी भाव। इनमें से मुख्य "भाव" है। यह भी

15- दैनिक "भारत" [इलाहाबाद] का रविवासरीय परिशिष्ट
दिनांक 12 जून 1955 [श्री जयशंकर त्रिपाठी]

स्थायी भावों में विभक्त है। विभाव को कारण और अनुभाव को कार्य कहा जाता है। ऐसी चीज़ें वस्तुएं या वातावरण जो स्थायी भावों को जाग्रत करने कारण बनती हैं उन्हें विभाव कहते हैं। मन में भावों के जाग्रत होने पर शरीर में, आँख और मुंह आदि की मुद्राओं में जो परिवर्तन होता है उसे अनुभाव या कार्य कहते हैं। संचारी- भाव उन सहयोगी भावों को कहा जाता है जो प्रकट और नष्ट होते रहते हैं, इनकी संख्या 33 है।

भाव का अर्थ सामान्यतः हुआ- मन के विकार, मन के व्यापार, मन की गति, प्रगति इच्छा, आकांक्षा आदि आदि।

विश्व के मानव मात्र का चाहे वह भारत का हो या पश्चिमी देशों का मन अपनी एक ही प्राकृतिक रखता है। जो अतीत हो चुकी है या जो भविष्य में होने वाली मानव की पीढ़ियाँ हैं, दार्शनिक चिन्तन के अनुसार इस पृथ्वी पर सभी के मन एक ही प्रकृति लेकर उपस्थित हुए हैं, उपस्थित हैं और उपस्थित होंगे। यह प्रकारान्तर से मन का विवेचन ही भावों का विवेचन है। इन सबको 9 भेदों में बाँटा गया है जिनको दो प्रमुख वर्गों में रखा जाता है -

1- प्रवृत्ति मूलक :- इसमें आठ भाव आते हैं - रति, उत्साह, हास्य, विस्मय, जुगुप्सा, भय, शोक और क्रोध।

2- निवृत्ति मूलक :- इसमें विरति या शम भाव आता है।

प्रवृत्तिमूलक आठ भावों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है - (1) विकास मूलक, (2) संकोच मूलक।

विकासमूलक हैं - रति, हास्य, उत्साह और विस्मय। इनसे श्रृंगार, हास्य, वीर और अद्भुत रस की अभिव्यक्ति होती है।

संयोगमूलक हैं – भय, जुगुप्सा, शोक और क्रोध । इनसे भयानक, वीभत्स, करुण और रौद्र रस की अभिव्यक्ति होती है ।

निवृत्तिमूलक विरति या शम स्थाई भाव से शान्त रस की अभिव्यक्ति होती है।

इन भावों और इनसे अभिव्यक्त होने वाले रसों को अपनी काव्य-वाणी से निर्बाध प्रवाहित करने वाले कवि कम मिले होते हैं। वाल्मीकि, कालिदास, प्रवरसेन, हाल, कबीर, सूर और हिन्दी के सन्त तुलसीदास इसके प्रमाण हैं। तुलसीदास की सफलता तो यहाँ तक है कि उनकी चौपाई की एक अर्धाली ही रस का उदाहरण बन जाती है। जैसे –

खंजन मंजु तिरीछे नयननि ।
निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि ।।

– रामचरितमानस- अयोध्याकाण्ड, दोहा-117.

लेकिन ऐसे सरस्वती के वरद् पुत्र कभी कभी कहाँ होते हैं। हमारे कवि रुद्र प्रताप आचार्य राजशेखर के अनुसार – "प्रतिभा व्युत्पत्तिमान् शास्त्र कवि हैं ।"[16]

इनकी वाणी में वह क्षमता नहीं है जो अविरल तरंगों से भरी हो। लेकिन कवि ने प्रयत्न किया है और जहाँ जैसे भावों की अभिव्यक्ति करनी चाहिए वहाँ उसकी वाणी अपने को असमर्थ देखती हुई वस्तु-वर्णन में तल्लीन हो जाती है। ऐसे अनेक उदाहरण इस प्रबन्ध काव्य में हैं ।

ऊपर जिन 9 स्थाई भावों का जिक्र किया गया है उनमें रति स्थाई भाव जो शृंगार रस की अभिव्यक्ति करता है वह अत्यन्त ही व्यापक है। मनुष्य से लेकर पशु पक्षियों तक इस रति भाव का साम्राज्य छाया हुआ है। पशुओं और पक्षियों तक इस रति भाव का साम्राज्य छाया हुआ है। पशुओं और पक्षियों की रति क्रीड़ायें भी अपने क्रीड़ास्थल में भावों के मधुर अनुभावों से अपने सुख की अभिव्यक्ति करती हैं । अतः इसे भावों का राजा कहा गया है । दाक्षिणात्य काव्यशास्त्र में शृंगार की संज्ञा अर्द्ध है और यहीं अर्द्ध

अलंकार -

काव्य का सौन्दर्य एवम् चमत्कार विशेष रूप से उसकी अलंकृत उक्तियों पर निर्भर करता है। अलंकृत उक्तियाँ प्रबन्ध और उसके कथा- रस को भी प्रदीप्त करती हैं। काव्यशास्त्र के इतिहास में पहला अस्तित्व अलंकृत उक्तियों का ही है।[24] ध्वनि और रस सिद्धान्तों के उन्मेष के बाद अलंकारों के महत्व को कम किया जाने लगा। यद्यपि आनन्दवर्धन कतिपय अलंकारों को ध्वनि के समान ही प्रतिष्ठा प्रदान करते हैं।[25]

अलंकार की परिभाषा भी समय-समय पर बदलती रही है। आचार्य दण्डी ने अलंकार की परिभाषा इस प्रकार दी है -

काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते ।
ते चाद्यापि प्रकल्प्यन्ते कस्तान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति ॥[26]

काव्य की शोभा उत्पन्न करने वाले धर्मों को अलंकार कहा जाता है। उनकी कोई सीमा नहीं है। आज भी उसके अनेक भेद कल्पित किए जाते हैं। अतः समग्र रूप से उनका व्याख्यान कोई नहीं कर सकता है।

भामह ने अलंकार की परिभाषा न करके काव्य रचना में उसके महत्व का ज्ञापन किया है। वे कहते हैं कि विद्वानों ने रूपकादि अलंकारों का अनेक प्रकार से व्याख्यान किया है वह इसलिए कि जैसे बहुत सुन्दर होने पर भी नारी का मुख बिना अलंकार के चमत्कृत नहीं होता उसी प्रकार यह बात कविता के लिए भी है। बिना अलंकार के कविता की शोभा नहीं होती -

---

24-
25- ध्वन्यालोक
26- काव्यादर्श 2/1. आचार्य दण्डी

साहित्य शास्त्र का विवेचन करने वाले अनुभवी विद्वानों का भी यह मत है कि बिना अप्रस्तुत विधान के काव्य का चमत्कार नहीं बढ़ता और काव्य में जीवन्तता नहीं आती तथा अप्रस्तुत विधान के सम्बन्ध में विस्तार से विचार किया है।[31]

अलंकारों का प्रयोग करना सामान्य कवि- कौशल की बात नहीं है। वाल्मीकि और कालिदास ने जिस प्रकार उपमा अलंकार का प्रयोग किया है वह प्रयोग उनके काव्य को जीवन्त बना देता है।

अप्रस्तुत अर्थात् उपमान या ऐसे शोभाशाली पदार्थ जिनका वर्ण्य विषय [प्रस्तुत] के साथ ले आकर कवि अपनी उक्तियों की कल्पना करता है और जिनके अनेक प्रकार तथा उप प्रकार हो सकते हैं, अलंकृत उक्ति के क्षेत्र के विपुल विस्तार की सूचना देते हैं। कवि अप्रस्तुतों का चयन विज्ञान और लोक से कर सकता है। उपमामूलक अलंकारों के बहुत भेद हैं। राजशेखर की काव्य मीमांसा के अनुसार औपम्य मात्र का एक अलग काव्यशास्त्र ही था।[32] औपम्यमूलक अलंकारों के अतिरिक्त दूसरे अलंकार स्वभावोक्ति और उक्ति विशेष पर आधारित होते हैं। आचार्य दण्डी ने समस्त अलंकारों को स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति इन दो वर्गों में ही रखा है।[33]

इस तरह से अलंकार काव्य का जीवन है। लेकिन हमारे कवि रुद्र प्रताप की काव्य प्रतिभा इस रूप में आलंकारिक कल्पना को प्रस्तुत नहीं कर सकी है। लेकिन अलंकारों का प्रयोग उन्होंने प्रसंग के अनुकूल यथास्थान किया है। उन्होंने अधिकांश उपमामूलक अलंकारों का प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास के

31- द्रष्टव्य - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत रसमीमांसा

32- काव्यमीमांसा - अध्याय- 1 [राजशेखर]

33- काव्यादर्श /2/ 363

श्लेषः सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम् ।
भिन्नं द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम् ॥

विविध प्रयोग दिखाई पड़ते हैं। श्लेष और यमक कहीं- कहीं हैं। उपमामूलक अलंकारों में जो अलंकार अधिक प्रयुक्त हुए हैं उनमें से ये हैं -

उपमा, व्यतिरेक, रूपक, निदर्शना, दीपक, दृष्टान्त, परिसंख्या, उत्प्रेक्षा आदि । कुछ अन्य अलंकार भी प्रयुक्त हुए हैं जैसे- अतिशयोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा, वक्रोक्ति ।

यहाँ पर कवि के अलंकार प्रयोग का परिचय देने के लिए कुछ अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं -

<u>अनुप्रास -</u> अनुप्रास का प्रयोग कवि के इस महाप्रबन्ध में प्रायः है। किन्हीं जैसे छन्दों में प्रत्येक चरण के मध्य के विरामों में व्यंजन सहित स्वर की आवृत्ति में अनुप्रास की अच्छी छटा प्रस्तुत होती है -

<u>उदाहरण -</u>

> बेनु कलम कुँवरिनि नचहीं कुण्ड किशोर । [34]
> जग जनी पद छिद्रि मधु आस्वाद पति रघुबीर।।

इस दोहे के उत्तरार्द्ध में "ध" वर्ण तथा "र" वर्ण की आवृत्ति में छेकानुप्रास है तथा "जग" "जनी" में वर्ण के तृतीय वर्ण आने से क्रमानुप्रास का चमत्कार है। पूर्वार्द्ध में क, ध, ल में भी यही क्रमानुप्रास है। द, क व में वृत्यानुप्रास अलंकार है।

<u>उपमा अलंकार :-</u> उपमा की परिभाषा यह है कि जहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत में भेद होते हुए भी समान धर्म के कारण समानता का चमत्कार दिखाई पड़े वहाँ उपमा अलंकार होता है । यथोक्तं - सा धर्म्य् उपमा भेदे [35] ।

34- सु० रामचन्द्र, रामपद, विश्राम - 1/11

35- काव्य प्रकाश, दशम उल्लास, 125.

आचार्य दण्डी ने भी प्रकारान्तर से उपमा की यही परिभाषा की है -

> यथा कथञ्चित सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते ।
> उपमा नाम सा तस्याः प्रपञ्चोऽयं प्रदर्श्यते ॥[36]

उपमा के सैकड़ों उदाहरण इस महाप्रबन्ध में हैं लेकिन उनमें आधे से अधिक कवि की कल्पना का पाण्डित्य ही प्रकट करते हैं। उनमें काव्य का सौन्दर्य नहीं आ पाता। ऐसी स्थिति में भी कुछ उदाहरण ऐसे हैं जिनमें उपमा का लालित्य प्रकट होता है -

उदाहरण -

> जलधाम धूम तमाल मरकत नील कमल समावनी,
> शोभा सुवेश सुमेखलावलि सुरत मुकु कव पावनी ।
> आभास रवि शत कोटि सम नहिं त्रिभुवनाथ सुरम्य सही,
> सोहे बहुरि वपु चारविधि वह विष्णु की शोभा कही[37] ॥

यह वर्णन भगवान विष्णु के रूप- सौन्दर्य का है। जब रावण के अत्याचार से पीड़ित होकर इन्द्रादि देवता ब्रह्मा को लेकर क्षीर-सागर के पास स्तुति करते हैं, पृथ्वी भी वहाँ गाय के रूप में खड़ी है। प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णु प्रकट होते हैं, कवि उन्हीं के सौन्दर्य का वर्णन उपमा की परिकल्पनाओं में कर रहा है।

कवि ने भगवान् विष्णु के नील कान्ति से भास्वर शरीर के लिए कई उपमान दिये हैं -

उनका वह शरीर श्यामल मेघ, धूम, तमाल, मरकत और नील कमल के समान सुन्दर था और मुख पर जो पवित्र केश की लटें लटक रही थीं वे बालक

36- काव्यादर्श / 2/ 14
37- कु० रामचरित/ बालमध्य, छन्द- 32.

की छटा के समान सुशोभित हो रही थीं। पहली बार तमाल, धूम आदि अप्रस्तुत [उपमान] हैं। द्वितीय बार घन- छटा अप्रस्तुत [उपमान] है। लेकिन कवि ने उपमा के ऐसे ही उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जहाँ सादृश्य मात्र है, चमत्कार नहीं है। इसका उदाहरण है -

बिह्वल अपार न सोच लघु कर बात का तातोपमा ।
उत्पात बहुरि पयाल भूतल भूरि बिह्वल आँगा ॥
कंजात- नयन सो पात जल बहु ओस कंजनिन्ह पर टरे।
भूतल- विलोपित गात मानहुँ भ्रमर बहु प्रागनद भरे[38] ॥

यह वर्णन सीताहरण के बाद राम के वियोग का है जहाँ वे सीता को खोजते- खोजते व्याकुल हो गये और पृथ्वी पर गिर पड़े। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। छन्द की तीसरी पंक्ति की उपमा तो चमत्कारपूर्ण है। इसमें कवि कहता है कि राम के कमल के समान नयन से आँसू बह रहे हैं जैसे कमल के पुष्प से ओस की बूँदें गिर रही हों। लेकिन चौथी पंक्ति की उपमा जो "मानो" के प्रयोग से उत्प्रेक्षा के रूप में है, चमत्कार को शिथिल कर देती है। राम का शरीर पृथ्वी की धूल से धूसरित हो गया है जैसे भ्रमर फूलों के पराग से आच्छन्न हो गया हो। यहाँ पर कवि ने भ्रमर के काले स्वरूप और भगवान राम के श्याम वर्ण की समानता रखकर यह उत्प्रेक्षा की है लेकिन राम धूल से धूसरित वियोग के दुःख में कातर हैं और वह भौंरा जब फूलों के पराग से धूसरित होता है तब आनन्द की स्थिति में होता है। राम और भौंरे के स्वरूप में बहुत अन्तर है और दूसरी बात यह है कि दोनों के अंतर्मन की स्थितियाँ भी सर्वथा भिन्न हैं। एक सुख में और एक दुःख में। अतः यह औपम्य- उक्ति [उत्प्रेक्षा] चमत्कार को उत्पन्न नहीं करती।

38- कु रामचंद्र, बत्ती पद, विश्राम- 22, छन्द- 80.

एकादश अध्याय

"भुविकान्तोत्सव राम कण्ठ" में हिन्दी की नई बोली का अस्तित्व

प्रस्तुत प्रबन्ध के कवि रूद्र प्रताप सिंह माण्डा के राजा थे। माण्डा की स्थिति कर्णावती नदी के तट पर है। कर्णावती नदी गंगा के दक्षिण माण्डा के निकट विन्ध्य पर्वत से निकल कर विन्ध्य पर्वत के किनारे बहती हुई विन्ध्याचल में गंगा से संगम करती है। जहाँ गंगा से संगम करती है वहाँ उसका रूप काफी विकृत और कुरूप हो गया है। क्योंकि बीच में कई सहायक नदियाँ इसमें अपना जल लाकर संगम करती हैं। गंगा नदी, कर्णावती और विन्ध्य पर्वत के बीच हिन्दी की एक ऐसी नई बोली का अस्तित्व सामने आता है जो दक्षिण की बघेली और गंगा के उत्तर की अवधी की सन्धि भाषा कही जा सकती है। इसका वर्तमान क्षेत्र इस प्रकार होगा -

1- उत्तर में गंगा नदी
2- दक्षिण में मेजा तहसील की कोहड़ार की पहाड़ियाँ
3- पूर्व में अष्टभुजी पहाड़
4- पश्चिम में टमसा (टौंस नदी) का तटवर्ती प्रदेश।

इसके क्षेत्र की भाषा के कारक और क्रिया पदों में ऐसे नव प्रयोग मिलेंगे जो इस क्षेत्र की बोली को अवधी और बघेली दोनों से भिन्न रूप प्रदान करते हैं। सामान्य तौर से यहाँ जो लोग बोलते हैं उनमें इसका नव स्वरूप तो बहुत ही स्पष्ट है, लेकिन कवि रूद्र प्रताप के इस "राम कण्ठ" प्रबन्ध में भी ऐसे प्रयोग हमें देखने को मिलते हैं।

(1) इस भाषा में सम्बन्ध कारक "का" के स्थान पर केवल "क" प्रयोग किया जाता है। जैसे - "हम कठिन कलेवा क सिहाय"

उदाहरण -

> तुम्हहिं उचित नहिं अपजस बानी ।
> कुलटा पतिव्रता नोहिं जानी[13] ।।

इस प्रकार के स्थानीय बोली के लगभग पाँच सौ शब्दों का प्रयोग इस कवि ने किया है जिनका अध्ययन भाषा- विज्ञान की दृष्टि से अलग महत्व रखता है। मैं उसके विस्तार में नहीं जाना चाहता, यहाँ पर सिर्फ संकेत मात्र किया है जिससे शोध- कार्य का भाषा सम्बन्धी कोना (बिन्दु) अछूता न रह जाय ।

13- कु॰ रामायण, युद्ध पद, विश्राम- 5, दोहा - 175.

दसवाँ अध्याय

उपसंहार एवं मूल्यांकन

अतीत से भी अतीत भगवान राम का इतिहास आज भी देश में ऐसा प्रतीत होता है कि यह घटना अभी घटी है। लोक के इतिहास के सारे आख्यान किसी हो रचनात्मक, किसी हो उलटफेर, किसी हो सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तन जनता भूल गई लेकिन उसे यह याद है कि अयोध्या में श्री राम पैदा हुए और गंगा पारकर विन्ध्य पर्वत के दण्डक वन में पहुँचे, रावण का संहार किया। उनकी विजय से राक्षस- संस्कृति का अन्त हो गया। इतनी लोकप्रिय और व्यापक कहानी इस देश में कोई अन्य नहीं है। इस देश के अतीत की सभी भाषाओं में, मध्यकाल की सभी बोलियों और उपभाषाओं में तथा वर्तमान में देश में जो भी भाषायें बोली जा रही हैं आसमुद्र हिमाचल कोई भी बोली भाषा ऐसी नहीं है जिसमें भी राम के चरित का गान न किया गया हो। अगर गिनती की जाय तो हजार की संख्या में ऐसी कृतियाँ मिलेंगी जो राम का चरित- गान करने के लिए लिखी गईं। इन सभी कथा- धाराओं का वाल्मीकीय- रामायण का विस्तृत और उन्नत गिरि शिखर जो पूर्वी समुद्र तट से पश्चिमी समुद्र- तट तक फैला हुआ है, जो धरती के धरातल से हिमालय की उत्तुंग शिखरों तक वर्तमान् है, वो उत्स है। हमारे कहने का अर्थ है कि राम कथा का पहला लोकप्रिय काव्य महर्षि वाल्मीकि की रचना ही है। यद्यपि अश्वघोष यह लिखता है कि पहले रामकथा च्यवन ऋषि ने लिखनी चाही थी लेकिन उसे असफल होने पर वाल्मीकि ने पूरी की। ऐसे विस्तृत राम- काव्य के रचना- संसार में किसी भी एक कृति का विश्लेषण, अन्वे- षण और मूल्यांकन साधारण काम नहीं है। क्योंकि रामकथा का जो भी घाट है उसमें अनेक धाराओं के संगम का जल आता है जैसे देश के किसी महासागर में अनेक नदियों के मार्ग आकर मिलते हैं। ऐसी स्थिति में राम काव्य का विश्लेषण नीर- क्षीर- विवेक न्याय से भी अत्यन्त दुष्कर कार्य है। वाल्मीकि के बाद जो भी राम काव्य लिखे गये उनमें उनके वर्तमान के देश-काल का बड़ा ही प्रभाव पड़ता रहा है

और अन्त में अलौकिक भगवान राम विष्णु के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित हुए और उनके वनवास की घटना देवों द्वारा सरस्वती के माध्यम से कैकेयी की मति बदलने के कारण घटित हुई आदि आदि। हमने जो यहाँ पर कवि रुद्र प्रताप के गुनिग्राम्सीतल रामखण्ड को अपने अन्वेषण का विषय बनाया तो उस अनुसंधान में संलग्न होने पर हमारे लिए किंकर्तव्य विमूढ़ता की स्थिति आ गई। राम- कथा के अनन्त रचना- संसार में अपने अनुसंधेय ग्रन्थ को समझने की महान् कठिनाई हमारे सामने आई। यद्यपि हमने इसे पूरा कर लिया है किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि मैंने सम्पूर्ण रूप से इसे पूरा कर लिया है। यह अब भी अधूरा है।

इसके अनुसंधान में हमारे लिए थोड़ी सुगमता अवश्य हुई और वह इसलिए कि स्वयं कवि ने इस बात का संकेत किया है कि वह अपने गुरु की कृपा से उन्हीं की आज्ञा पाकर महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण काव्य को भाषा में गान करने जा रहा है।[1] इसमें एक बात और सामने आई कि जब मैं काशी नागरी प्रचारिणी सभा की हस्तलिखित खोज रिपोर्ट का अवलोकन करने लगा तो उसके प्रथम खण्ड में बाबू श्यामसुन्दर दास ने इसकी हस्तलिखित पाण्डुलिपि की चर्चा करते हुए इसे वाल्मीकि रामायण और योग कल्प के आधार पर रचित बताया है। योग कल्प ग्रन्थ मुझे बहुत ढूँढ़ने पर भी नहीं मिला। सम्भवतः यह योग वाशिष्ठ कल्प के आख्यानों का संग्रह हस्तलिखित होगा और किन्हीं प्राचीन पुस्तकालयों में संगृहीत होगा। बाबू श्यामसुन्दर दास ने यह उल्लेख नहीं किया कि यह योगकल्प ग्रन्थ कहाँ है। इस योग कल्प ग्रन्थ का पता लगाने के लिए हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज रिपोर्ट देखने के अनन्तर मैं डॉ० उमाशंकर त्रिपाठी, इलाहाबाद के पास पहुँचा। उनके पास पहुँचने का मेरा प्रयोजन यह था कि इलाहाबाद

1- वाल्मीकि रचना गुरु देही।
   भाषा कर रुचि भई विदेही।
         - रु रामखण्ड, छं० ५५

बातों पर विचार करता हूँ तो कवि के अथक परिश्रम और उसकी लगन पर मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है ।

यह एक विचित्र संयोग की बात है कि राम का जन्म अयोध्या में हुआ लेकिन उन्होंने जीवन के महत्वपूर्ण कार्य गंगा पार करके विन्ध्य प्रदेश, दण्डक वन और समुद्र पार कर किये और उनकी यश गाथा लिखने वाले आदि कवि वाल्मीकि भी अयोध्या के नहीं थे, गंगा के दक्षिण तमसा के तट पर रहने वाले इसी विन्ध्य कानन के गुरुकुल के आचार्य थे । कालान्तर में मध्य काल में हिंदी में जो कालजयी दो कृतियाँ राम के आख्यान पर लिखी गयीं - "रामचरितमानस" और "रामचन्द्रिका" इन ग्रन्थों के महान कवि सन्त गोस्वामी तुलसीदास और आचार्य केशव भी इसी विन्ध्य कानन में उत्पन्न हुए थे । तुलसीदास ने यमुना के तट पर जन्म लिया और केशवदास ने बेतवा के तट पर जन्म लिया। यह कितना विचित्र संयोग है कि प्रस्तुत ग्रन्थ "रामखण्ड" के कवि रुद्र प्रसाद भी इसी विन्ध्य प्रदेश की नदी मन्दाकिनी के तट पर जन्म लेते हैं ।

इस ग्रन्थ की चार प्रमुख विशेषतायें हैं -

1- वाल्मीकि रामायण के कुछ अंशों को हिन्दी भाषा में कैसे ही प्राञ्जल अभिव्यक्ति देना ।

2- नये कथानकों की कल्पना में स्वाभाविक तारतम्य की रक्षा करना ।

3- कला पक्ष का विस्तृत सन्निवेश जिसमें अलंकार, भाव- रस तथा छन्दों के विविध प्रयोग कवि की काव्य प्रतिभा का परिचय देते हैं ।

4- इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक आकर्षण एवं कवि का अधिकांश इतिहास लेखन है। यह इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि हम यदि इस राम काव्य को न भी पढ़ना चाहें तो भी कवि के मध्य काल और पूर्व काल के इतिहास की कई अज्ञात घटनाओं के वर्णन की ओर जिज्ञासु मन स्वतः आकर्षित होता है और उसका अध्ययन हमें इतिहास प्रेम की दृष्टि से अवश्य करना चाहिए और यह सुनिश्चित है कि उससे हमें कुछ महत्वपूर्ण तथ्य अवश्य प्राप्त होगा ।

कवि ने इस ग्रन्थ की रचना 1820 ई० में की थी। तब तक भारत में स्थापित होने वाली ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारत का कोई इतिहास लिखाया नहीं गया था। अतः कवि रुद्र प्रताप ने जो कुछ इतिहास लिखा है, प्रत्यक्ष लिखा है उसका स्रोत कहीं और है। उसमें वर्णित घटनाओं की सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता।

हम कवि की भाषा की बहुत तारीफ नहीं करेंगे क्योंकि सब कुछ होते हुए भी उसमें प्रवाह की प्राञ्जलता नहीं है। अगर यह बात होती तो यह ग्रन्थ बहुत ही लोकप्रिय हो जाता। तो भी कवि की दृष्टि बड़ी व्यापक है। उसने काव्य नहीं आख्यान लिखा है जो संस्कृत के महाभारत के समान विस्तृत है जिसमें अनेक आख्यान, उपाख्यान, नीति- राजनीति, ध भक्ति ज्ञान ध्यान के संदर्भ हैं। इतिहास है, भूगोल- खगोल, तन्त्र- मन्त्र आयुर्वेद है, आदि आदि।

इस दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास और महाकवि केशवदास के बाद हिन्दी में जो राम काव्य लिखे गये उनमें इसे तीसरा महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। रीवा नरेश राजा रघुराज सिंह ने जो "सीता स्वयंवर" काव्य लिखा है वह इसकी तुलना में बहुत पीछे छूट जाता है। इस ग्रन्थ के लिए यह दुःखद प्रसंग रहा कि इसके लिए कोई उपयुक्त व्याख्याता और 20वीं सदी में भी इसके लिए कोई उपयुक्त आलोचक नहीं मिला जिससे इस ग्रन्थ की विशेषताएँ राम-कथा- साहित्य- प्रेमियों के बीच उजागर होतीं। आशा करता हूँ कि अब वे उजागर होंगी।